

भगवत्पतञ्जलिप्रणीतम्

चरणश्रृङ्गरहितम् नटराजस्तोत्रम्

(आङ्गल-हिन्दी अनुवाद सहितम्)

व्याख्याता

द्वादशदर्शनाचार्य स्वामी श्रीकाशिकानन्दगिरिजी

महाराजः महामण्डलेश्वरः

English rendering by

Dr. Usha Bhise

प्रकाशक

आनन्दवन अध्यात्म विद्याप्रकाशन ट्रस्ट

आनन्दवन आश्रम, एस. वी. रोड

कांदिवली (पश्चिम), मुंबई-४०० ०६७

भगवत्पतञ्जलिप्रणीतम्
चरणशृङ्गरहितम् नटराजस्तोत्रम्

द्वादशदर्शनाचार्य
महामण्डलेश्वर स्वामी काशिकानन्दगिरिजी महाराज

प्रकाशक :-
आनन्दवन अध्यात्म विद्या प्रकाशन ट्रस्ट
आनन्दवन आश्रम
स्वामी विवेकानन्द मार्ग
कांदिवली (प.), मुम्बई-४०० ०६७
दूरध्वनिः २८०५ २८५९

प्रत : १,०००

पुर्नमुद्रण अगस्त २००९ (श्रावण मास)

प्राप्तिस्थानः-
(१) आनन्दवन आश्रम
एस. वी. रोड
कांदिवली (प.)
मुंबई-४०० ०६७

(२) आनन्दवन आश्रम
दक्षेश्वर मार्ग
जगजीतपुर, कनखल
हरिद्वार - उत्तरांचल

Publishers:
Forum Print,
15, Mehta Indl. Estate,
Liberty Garden, Malad (W),
Mumbai-400 064.
Tel.: 4003 5880

Typesetting:
Karan Creatives,
B/12, Raj-Ratna,
Eksar Road, Borivali (W),
Mumbai-400 091.
Tel.: 2833 7441

नटराज स्तोत्रम की भूमिका

भगवत्पतंजलिप्रगीत नटराजस्तोत्र दक्षिण भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। वहीं चिदम्बर नामक स्थान में एक भव्य विशाल मंदिर में नटराज भगवान का अति भव्य विग्रह है। नटराज भगवान शिव की वहां सविधि पूजा होती है। प्रस्तूयमान स्तोत्र में फलश्रुति श्लोक से अतिरिक्त सभी श्लोकों के अन्त में 'चिदम्बर नटं हृदि भजे' आया है। इस से अंदाजा लगता है कि उसी नटराज मंदिर में महर्षि पतञ्जलि ने यह स्तुति गायी है।

यद्यपि चिदम्बर का चिदाकाश अर्थ भी है। परंतु प्रथमोपस्थिति तो उस चिदम्बर मंदिर की ही होगी जहां नटराज की जगत्प्रसिद्ध दिव्य मूर्ति है। जैसे 'वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं' बोलने पर वरणायाश्च नासायाश्च मध्यं वाराणसी अर्थात् भ्रुकुटी मध्य स्थान, उस का नाथ यह अर्थ सहसा उपस्थित नहीं होता, किन्तु काशी के नाथ को ही लोग झट समझते हैं। वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथं इत्यादि में भी वही अर्थ जगत् ग्राह्य होता है और श्लोक भी व्यासजी ने वाराणसी में रहते हुए ही गाया ऐसा लोग अंदाजा लगाते हैं। वैसे यहां पर भी उसी प्रसिद्ध्यनुसार अर्थ समझना ही संगत होगा।

प्रस्तूयमान नटराजस्तोत्रकर्ता पतञ्जलि भी प्रसिद्ध व्याकरण महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ही सब के दिमाग में प्रथम उपस्थित होते हैं। यहां के ललित एवं गंभीर पदविन्यास से भी उन्हीं का अंदाजा सही प्रतीत होता है। महाभाष्य की प्राञ्जलता जगत्प्रसिद्ध है, वही प्राञ्जलता इस स्तोत्र में भी लक्षित होती है। इसलिये भी इसी निश्चय पर हम पहुँचते हैं कि इस के कर्ता पतञ्जलि महाभाष्यकर्ता भगवत्पतञ्जलि से अभिन्न हैं। अभिन्न हो भिन्न हो प्रकृत में क्या फरक पडता है? यह प्रश्न होगा। यही कि स्तुत्य की महिमा एवं

स्तोता की गरीयता उपस्थित होने पर स्तुति पाठ करते समय एक विशिष्ट उत्कर्ष भाव (तथा श्रद्धातिरेक) स्तोत्र में अभिव्यक्त होता है जो परम भक्ति उद्भावन में सहायक है। तिस पर भाषा की प्रञ्जलता चार चांद लगाती है। सदञ्चितमुदञ्चितनिकुञ्चितपदं इत्यादि बोलते और सुनते समय ऐसा लगता है कि मानो हम किसी दिव्य झूले में झूल रहे हैं, हृदयतरङ्ग में हम आगे आगे नटराज की ओर बढ रहे हैं और भगवच्चरणों में पहुँच रहे हैं। ऐसा लगता है कि हृदय तरंगों में आरूढ होकर हम आगे बढ रहे हैं। समुद्र में तरंगें उठकर किनारे की ओर दौडती हैं वैसे स्तुति तरंगों में तैरते हुए भगवच्चरणों में पहुँच रहे हैं भवसागर पार, पढते हुए लक्ष्यवेधन कर रहे हैं।

इस स्तोत्र के छन्द का नाम चरणशृङ्गरहित बताया गया है। क्या इसका अर्थ? क्या मतलब? इसका अनुवाद या अर्थ तामिल भाषा में लिखा है 'अटि मुटि काणात' 'अडि मुडि काणात' ऐसा भी उच्चारण करते हैं। इस का अर्थ 'बे सिर पैर' (सिर पैर रहित) हो सकता है। किन्तु यह आक्षेपार्थ में या निकृष्टार्थ में प्रयुक्त होने से त्याज्य है। जैसे लोग प्रयोग करते हैं-बे सिरपैर की बात करता है। काणात का 'न दिखनेवाला' अर्थ करने पर कुछ राहत मिलती है। आदि अन्तरहित ऐसा भी कुछ लोग अर्थ करते हैं। किन्तु आदि अन्त श्लोकों में और पादों में दिखते हैं अतः छन्दनियमों के अनुसार विचार करें। छन्दों में आठ गण बताये हैं।

आदिमध्यासनेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवौ॥ इस का खुलासाः-
मस्त्रिगुरुस्त्रिघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः
जो गुरु मध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

तीन-तीन अक्षरों का गण मानने पर

ज स न भ ज स न भ

---

(१) सदञ्चित मुदञ्चित निकुञ्चित पदं झल झलं चलित मञ्जुकटकम्

इस में सम्यक् सार्थक कोई भी गणरूप पद न होने से उच्चारण के साथ अर्थभान नहीं हो पाता। कुञ्चित चलित ऐसे दो एक ही अर्थबोधक है वह भी समस्तैकदेश है। अतः त्रिव्यञ्जन गणनियम छोडकर चतुर्व्यञ्जन गणों को लेना होगा।

---

(२) सदञ्चित मुदञ्चित निकुञ्चित पदं झल झलं चलित मञ्जु कटकम्
(दो अक्षर शृङ्ग)

इस में ''झलंचलि इतना और 'तमञ्जुक' इतना अनर्थक आयेगा जिस का अन्य सहायक हो यहां अन्त में 'टकं' इतना निर्गण शृंग है। निरर्थक इतर से मिलाकर सार्थक करना पडेगा।

---

(३) सदञ्चित मुदञ्चित निकुञ्चितपदं झलझलं चलितम् मञ्जुकटकम्

इस में प्रथम दो अक्षर चरण एवं चार-चार अक्षरों के गण कुछ कुछ अर्थ बोधक हैं। इन में दो नंबरवाले में प्रथम दो अक्षर अलग न होने से चरण नहीं है, अन्त में दो अतिरिक्त अक्षर होने से दो शृंग है। तीन नंबर में दो चरण है। दो अक्षर मात्ररूपी शृंग नहीं है। इस में एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्ति के अनुसार न्यायभाषा में उभयभाव है। दो दो पादों के अन्त में विराम होता है। संधिकार्यादि नहीं होता। जैसे एक रुपया जेब में होने पर भी दो रुपया नहीं बोलते हैं। दो में एक का अभाव है। दोनों का अभाव कहां है? तथापि उभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव है। इसी को लेकर चरणशृङ्गरहितं कहा।

भगवान शंकर भी चरणशृगरहित हैं। महिम्नःस्तोत्र में पुष्पदन्त गन्धर्वराज ने कहा

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेतुं यातावनल मनलस्कन्धवपुषः

ब्रह्मा और विष्णु के कादाचित्क विवाद में भारी युद्ध की परिस्थिति उपस्थित हुई थी। तब उसे रोकने के लये भगवान शंकर ज्योतिर्लिङ्ग रूप में मध्य में प्रकट हुए थे। उस ज्योतिर्लिंग का आदि अन्त नहीं दिख रहा था तो कहां इस का आदि है और कहां इस का अन्त है इसे पाने के लिये सूकररूपेण भगवान विष्णु पाताल से भी नीचे पहुँचे और अन्त पाने के लिये ब्रह्मा हंस होकर या हंसवाहन होकर भूर्भुवः स्वरादि लोकों को पार कर ऊपर की ओर गये। दोनों ही अपने कार्य में असफल होकर पूर्व स्थान में आये और भगवान शंकर को प्रणाम किया, स्तुति की। यहां आद्यन्तरहित शंकर का स्तवन है। आद्यन्तरहितशिववर्णनात्मक होने से चरणशृङ्गरहित ऐसा स्तुति को बताया। ऐसा भाव यहाँ अभिव्यक्त होता है।

'शब्दार्थैक्यं निरूचुर्निरुपधिमपरे शक्तिमर्थस्य शब्दे'

इत्यादि वचनानुसार शब्द और अर्थ का अभेद होने से छन्द का नाम चरणशृंगरहित हुआ यह भी विद्वन्मत है। परंतु दक्षिण में प्रसिद्ध चिदम्बर मंदिर में स्थित मूर्त्ति से ऐसी सूचना मिलती है क्या? यह एक प्रश्न जरूर होगा। स्तुति में 'अनन्तमहसं' इत्यादि विशेषण से अनन्त 'महस्' (तेज) आदि में प्रतीत होती है। चरणपदसूचित एवं शृङ्गपदसूचित वृषभादिरूपक तो उपलब्ध नहीं होता। यदि विद्वानों को उस अर्थ से मनःसंतोष होता हो तो हमें कोई विरोध भी नहीं है। अस्तु।

पदसंचयमाधुर्य, भाषामाधुर्य, आशयगाम्भीर्य आदि के बारे में महर्षि पतञ्जलि के साहित्य में रोशनी डालना तो सूर्य को दीपक दिखाना ही है। आधुनिक साहित्यरसिक एक स्वर से कहते हैं कि संस्कृत साहित्य में तो पातञ्जल महाभाष्य तथा ब्रह्मसूत्र

शांकरभाष्य की तुलना किसी भी अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। कठिन विषयों को प्राञ्जल भाषा में ढालने में ये ही दो पूर्ण सफल हुए हैं। 'भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं' ऐसा शांकर भाष्य के बारे में द्वादशदर्शनकाननपञ्चानन श्री वाचस्पति मिश्र तथा पञ्चपादिकाकर श्री पद्मपादाचार्य एक स्वर में ही नहीं सम शब्द में ही प्रयोग करते हैं। महाभाष्य में तो अनुक्त सर्वप्रत्यक्ष है।

महाभाष्य में प्रत्यक्षानुभूयमान प्राञ्जलता और गम्भीरता इस नटराजस्तोत्र में भी लक्षित होती हैं। अतएव रचयिता के बारे में ऊहापोह करने के लिये स्थान ही उपलब्ध नहीं होता। गङ्गाप्रवाह के समान नटराजस्तोत्र का भाषाप्रवाह प्रसन्न गंभीर स्पष्ट है। अतएव स्तोत्र के अध्यात्मपक्षीय अर्थ में भी कोई खींचातानी लक्षित नहीं होगी।

पंद्रह बीस साल पहले भारती संस्कृत विद्यानिकेतनवालों के आमंत्रण पर मैंने नटराजस्तोत्र पर प्रवचन किया था। तदनन्तर स्वयं मैंने श्लोकों पर व्याख्या हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में लिखी। संस्कृत में सगुण शिवपक्ष में तथा निर्गुण शिवपक्ष में अलग अलग व्याख्या लिखी। और मुंबई विश्वविद्यालय की पूर्व प्राचार्य डाक्टर श्रीमती उषा भिसे ने आंग्ल भाषा में अनुवाद किया जो आंग्लभाषाप्रेमियों को भी महोपकारी होने से साथ में मुद्रित किया।

सव्याख्य नटराजस्तोत्र के पुनर्मुद्रण के लिये संप्रति ब्रह्मलीन सुश्री स्वामी चित्कलानन्दगिरि का विशेष आग्रह था। उन के विशेष आग्रह एवं भगवत्प्रेमभक्ति के कारण ही पुनर्मुद्रणार्थ मेरा यह प्रयास प्रारंभ हुआ। प्रूफ संशोधन कार्य भी काफी उन्हों ने किया। अतएव मुद्रणपूर्वावस्थारूप को उन्हों ने देखा और प्रसन्न हुई इतनी संतोष की बात है। भक्तजनों के संमुख उसे रखकर उपराम लेने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ इसे भी मैं प्रभुकृपा समझूंगा।

वृद्धावस्था के कारण आंखों में कमजोरी आने से अशुद्धियां

प्रूफ संशोधनकाल में रह रही थी। परंतु अक्षरयोजना एवं बार-बार सुधार करने की तकलीफ सहन करते हुए भी श्रीमान् भद्रेशजी ने काफी सम्हाला और प्रेम से कार्य संपन्न किया। मैं उनको धन्यवाद देता हूं। आर्थिक सेवा श्रीमान् माधवजी ओझा एवं नचिकेत ओझा ने परम उदारता से नटराजस्तोत्र मुद्रणार्थ किया। नटन से जगत् रक्षा करनेवाले भगवान शंकर आप को भी परम श्रेय प्राप्त करायें।

द्वादशदर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर
श्री स्वामी काशिकानन्दगिरि

भगवत्पतञ्जलिप्रणीतम्

चरणशृङ्गरहितम् नटराजस्तोत्रम्

सदञ्चितमुदञ्चितनिकुञ्चितपदं झलझलञ्चलितमञ्जुकटकम्
पतञ्जलिदृगञ्जनमनञ्जनमचञ्चलपदं जननभञ्जनकरम्।
कदम्बरुचिमम्बरवसं परममम्बुदकमबकविडम्बकगलम्
चिदम्बुधिमणिं बुधहृदम्बुजरविं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ १ ॥

हरं त्रिपुरभञ्जनमनन्तकृतकङ्कणमखण्डदयमन्तरहितं
विरिञ्चिसुरसंहतिविचिन्तितपदं तरुणचन्द्रभुजगेन्द्रमुकुटम्।
परं पदविखण्डितयमं भसितमण्डिततनुं मदनवञ्चनपरं
चिरन्तनममुं प्रणतसञ्चितनिधिं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ २ ॥

अनन्तमखिलं जगदभङ्गगुणतुङ्गममलं धृतविधुं सुरसरित्-
तरङ्गनिकुरम्बधृतिलम्पटजटं शमनदम्भसुहरं भवहरम्।
शिवं दशदिगन्तरविजृम्भितकरं करलसन्मृगशिशुं पशुपतिं
हरं शशिधनञ्जयपतङ्गनयनं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ३ ॥

अनन्तनवरत्नविलसत्कटककिङ्किणिझलंझलझलंझलरवं
मुकुन्दविधिहस्तगतमद्दललयध्वनिधिमिद्धिमितनर्तपदम्।
शकुन्तरथबर्हिरथ नन्दि(दन्ति)मुखशृङ्गिरिटिभृङ्गिगणसङ्घनिकटम्
सनन्दसनकप्रमुखवन्दितपदं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ४ ॥

अनन्तमहसं त्रिदशवन्द्यचरणं मुनिहृदन्तरवसन्तममलम्
कबन्धवियदिन्द्ववनिगन्धवहवह्निमखबन्धुरविमञ्जुवपुषम्।
अनन्तविभवं त्रिजगदन्तरमणिं त्रिनयनं त्रिपुरखण्डनपरम्
सनन्दमुनिवन्दितपदं सकरुणं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ५ ॥

अचिन्त्यमलिवृन्दरुचिबन्धुरगलं कुरितकुन्दनिकुरम्बधवलं
मुकुन्दसुरवृन्दबलहन्तृकृतवन्दनलसन्तमहिकुण्डलधरम् ।
अकम्पमनुकम्पितरतिं सुजनमङ्गलनिधिं गजहरं पशुपतिं
धनञ्जयनुतं प्रणतरञ्जनपरं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ६ ॥

परं सुरवरं पुरहरं पशुपतिं जनितदन्तिमुखषण्मुखममुं
मृडं कनकपिङ्गलजटं सनकपङ्कजरविं सुमनसं हिमरुचिम् ।
असङ्गमनसं जलधिजन्मगरलं कवलयन्तमतुलं गुणनिधिं
सनन्दवरदं शमितमिन्दुवदनं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ७ ॥

अजं क्षितिरथं भुजगपुङ्गवगुणं कनकशृङ्गिधनुषं करलसत्-
कुरङ्गपृथुटङ्कपरशुं रुचिरकुङ्कुमरुचिं डमरुकं च दधतम् ।
मुकुन्दविशिखं नमदवन्ध्यफलदं निगमवृन्दतुरगं निरुपमं
सचण्डिकममुं झटितिसंहृतपुरं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ८ ॥

अनङ्गपरिपन्थिनमजं क्षितिधुरन्धरमलं करुणयन्तमखिलं
ज्वलन्तमनलं दधतमन्तकरिपुं सततमिन्द्रमुखवन्दितपदम् ।
उदञ्चदरविन्दकुलबन्धुशतबिम्बरुचिसंहतिसुगन्धिवपुषं
पतञ्जलिनुतं प्रणवपञ्जरशुकं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ९ ॥

इति स्तवममुं भुजगपुङ्गवकृतं प्रतिदिनं पठति यः कृतमुखः
सदःप्रभुपदद्वितयदर्शनपदं सुललितं चरणशृङ्गरहितम् ।
सरः प्रभवसम्भवहरित्पतिहरिप्रमुखदिव्यनुतशङ्करपदं
स गच्छति परं न तु जनुर्जलनिधिं परमदुःखजनकं दुरितदम्॥ १० ॥

भगवत्पतञ्जलिप्रणीतम्

चरणशृङ्गरहितम् नटराजस्तोत्रम्

आचार्य–महमण्डलेश्वर-श्री काशिकानन्दस्वामीकृत-चन्द्रकलाव्याख्यासहितम्

एकः सन् बहुधा येऽभून्नटवज्जगदात्मना।
तं वन्दे सच्चिदानन्दं नटराजं महेश्वरम्॥

सदञ्चितमुदञ्चितनिकुञ्चितपदं झलझलञ्चलितमञ्जुकटकम्
पतञ्जलिदृगञ्जनमनञ्जनमचञ्चलपदं जननभञ्जनकरम्।
कदम्बरुचिमम्बरवसं परममम्बुदकम्बकविडम्बकगलम्
चिदम्बुधिमणिं बुधहृदम्बुजरविं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ १ ॥

अथ संसारजलनिधिनिमग्नानुद्धर्तुकामो भगवान् पतञ्जलिस्तुष्टाव भगवन्तं नटराजं शङ्करं लोकानामुपकृतये तां स्तुतिं निबबन्ध च। तस्येदमक्षरार्थव्याख्यानं संक्षेपेण क्रियते। अत्र प्रथमं चतुर्भिः श्लोकैर्नटराजस्य नटनपरस्य शङ्करस्य स्वरूपं तत्कार्यं चाह। तत्र प्रथमे स्पष्टं नटस्वरूपवर्णनं चतुर्थे च। द्वितीये अनन्तकृतकङ्कणमिति तृतीये दशदिगन्तरविजृम्भितकरमिति च विशेषणतो नटस्वरूपं संसूच्य तस्य तच्चिन्तनस्य च फलं निरवर्णयत्। तत्र प्रथमं नटराजस्वरूपं वर्णयन्नेव स्तौति सदञ्चितेत्यादि। चिदम्बरनटं भज इत्यन्वयः। कीदृशम्? सदञ्चितं सद्भिः सुधीभिरञ्चितं पूजितम्। 'सन् सुधीः कोविदो बुध'इत्यमरात्, अञ्चु गतिपूजनयोरिति धातुपाठाच्च। पूजनप्रसन्नश्च

नटनमकरोत्। प्रार्थनयोपगतमिति वा। सद्गुणाञ्चितमिति वा। प्रशस्तकर्माञ्चितमिति वा। सर्वत्र पूजार्थतासत्त्वाद् 'अञ्चेः पूजायामि'तीट् 'नाञ्चेः पूजायामि'ति नलोपाभावश्च द्रष्टव्यः। उदञ्चितनिकुञ्चितपदम् उदञ्चितमुद्गतम् ऊर्ध्वमुत्थापितमिति यावत्, निकुञ्चितं वक्रीभूतं च पदमेकं यस्य स तथा तम्। अत्रापि पूजार्थताविवक्षया रूपम्। स्वार्थे णिचोऽन्तर्भावणाद्वा। उद्गमितमिति णिजर्थविवक्षणाद्वा। नटनार्थं पादोञ्चनादिकं प्रसिद्धम्। तत एव झलंझलमिति। अव्यक्तशब्दानुकरणम्। झलंझलमिति शब्दयुक्तं यथा स्यात्तथा चलिते मञ्जुनी कटके यस्य तम्। 'कटकस्त्वद्रिनितम्बे बाहुभूषणे सेनायां राजधान्यां च' इति हेमः। रुद्रसेनार्थकत्वमपि ततः शक्यं ग्रहीतुम्। पतञ्जलिदृगञ्जनम्। पतञ्जलेः स्वस्य दृशो ज्ञाननेत्रस्याञ्जनं दोषापहारकम्। यथाऽञ्जनविशेषेण यक्षरक्षःप्रभृतिदर्शनं यथा वा मण्डूकवसाञ्जनेन वंशोरगदर्शनं तथाऽयमञ्जनविशेषो येन सर्वत्र ब्रह्मदर्शनमिति भावः। अनञ्जनं निर्दोषम्। दृगञ्जनमनञ्जनम् इति विरोधाभासः। परिहार उक्तः। पतन्नञ्जलिर्यस्य परमेश्वरं प्रति स पतञ्जलिः शकन्ध्वादित्वाट्टेः पररूपम् इति पक्षाश्रयणे सर्वभक्तजनदृगञ्जनम् इत्यर्थलाभोऽपि भवति। उदञ्चितपदत्वेऽप्यचञ्चलं पदं यस्य च तमचञ्चलपदम् स्वावस्थाप्रच्युतिरहितं पदं स्वरूपमित्यर्थकरणाद् विरोधपरिहारः। भजे इति वक्तव्यस्य भजनस्य प्रयोजनं दर्शयन् हेतुगर्भविशेषणमाह जननभञ्जनकरमिति। जन्मसंसारनिवर्तकमित्यर्थः। किं च कदम्बरुचिम्। कदम्बो वृक्षविशेषः। 'प्रौढाः कदम्बानिलाः' 'प्रौढपुष्पैः कदम्बैः' इत्यादिरूपेण कविभिर्वर्ण्यते। वृत्तसुगन्धिपुष्पवान् उन्नतशाखो वृक्षस्तस्य रुचिरिव रुचिर्यस्य स कदम्बरुचिस्तम्। कदम्बवनचारिणी हि देवी। कदम्बमूलाश्रयी च श्रीकृष्णः।

तत्रश्रायीभूतकदम्बसमत्वमीशस्येति। अम्बरवसमति। अम्बरमाकाशमेव वसो वसनं यस्य तं दिग्वाससं निरावरणमिति यावत्। अम्बुदेति। अम्बुदानां मेघानां कदम्बकं समूहं विडम्बयति अनुकरोतीति तथा तादृशो गलो यस्य स तं नीलकण्ठमित्यर्थः। मरणहेतुगरलोपकर्मापहारकत्वं दयावत्त्वं चानेन सूचितं यतो जननभञ्जनकरत्वमुपपद्यते। परमं श्रेष्ठं महेशत्वाद् महादेवत्वात्। चिदम्बुधिमणिम् अभास्वरशुक्लवर्णजलार्णवोज्ज्वलताकारिणोऽन्ये मणयः। अयं पुनश्चैतन्यसागरोज्ज्वलताकारीति परमतेजःस्वरूपतोक्ता भवति। तथा च श्रुतिः 'चेतनश्चेतनानामि'ति। यद्वा सागरसमव्यापकचैतन्यप्रकाशोद्भावकमणिभिरित्यर्थः। बुधेति। बुधानां विदुषां हृदयाम्बुजव्याकोचकत्वात्तस्य रविमिव रविमित्यर्थः। एवंभूतं परचिदम्बरनटं परस्मिन् श्रेष्ठे चिदम्बरे तन्नामस्थाने नटतीति तथा तं हृदि भजे। भजेति लोण्मध्यमपुरुषप्रयोगो वा सर्वत्रे त्येके॥ १ ॥

व्याख्यानान्तरम्

गम्भीरार्थं वचोजातं यन्महर्षेः पतञ्जलेः।
तत्प्रकारान्तरेणापि व्याचक्षे विदुषां मुदे॥ १ ॥

भगवतः पतञ्जलेर्वचनस्यातिगभीरत्वात्प्रकारान्तरेणापि व्याख्यायते। ब्रह्मपरा अपि भवन्त्येते श्लोकाः। सदञ्चितं सद्भिर्ब्रह्मविद्भिः पूज्यतयोपगतम्। सद्रूपताप्राप्तमिति वा सद्रूपेण सर्वत्रावगतमिति वा। उदञ्चितेति। उदिति ब्रह्मनाम। तद्रूपेणाञ्चितं गतम्। 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' इति श्रुतेः। त्रिपादुदञ्चितम्। 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति श्रुतेरेकं च पदं नि इति न्यग्भूततया कुञ्चितमधःस्थितं, तथा चोदञ्चितं च त्रयं

निकुञ्चितं चैकं पदं यस्य स तथा तमित्यर्थः। झलेति। झलझलमिति चलिता मञ्जवः कटकाः सेना यस्य स तम्। 'असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्' इत्यादि श्रुतिवचनादनन्तरुद्रसत्त्वमवगम्यते। ते नानाशब्दरूपा इति शब्दब्रह्मवादिनः। अस्माकं प्रवाहरूपेणोत्पद्यमाना आकाशाद्याः पदार्था एवेति विशेषः। पतञ्जलीति। प्राग्वदर्थः। यद्वा पतन्नञ्जलिर्यस्मिन् परमेश्वरे नमस्कार्यत्वात् स च सा दृक् च चैतन्यलक्षणा तस्या अञ्जनं स्वस्यैव स्वयं व्यञ्जनरूपं स्वयंप्रकाशमित्यर्थः। पतञ्जलेर्मम ज्ञानदृशं व्यञ्जयतीति वा। अनञ्जनं मायाकल्मषरहितम्। 'निरवद्यं निरञ्जनमि'ति श्रुतेः। अचञ्चलं-स्वावस्थाप्रच्युतिरहितम्। निष्क्रियमित्यपि। तादृशं पदं स्वरूपं यस्य। जननेति स्पष्टम्। कदम्बरुचिं कदम्बवद् रुचिर्यस्य। विराड् हिरण्यगर्भादिरूपेण स्थितः किल विश्वतैजससमष्टिकदम्बतुल्यः वस्तुतो न कदम्बत्वमिति द्रष्टव्यम्। अम्बरवसम् हृदयाकाशवासिनम्। 'तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यमि'त्यादि श्रुतेः। अम्बरस्य वसो वासो यत्रेति वा 'आकाश ओतश्च प्रोतश्चे'ति श्रुतेः। परमम्। परा मा ज्ञानं यस्य तम्। 'अथ परा यया तदक्षरमवगम्यत' इति श्रुतेः। श्रेष्ठमिति वा। अम्बुदेति। उद्गिरणनिगरणस्थानं गलः। स परमात्मा जगदुद्गिरति सृष्टिकाले। तत्स्थानमम्बुदकदम्बकविडम्बकम्। तमोमय्या मायया स्थूलजगदुत्पत्तेः। 'श्यामाच्छबलं प्रपद्य' इत्यादिश्रुतेश्च। मायावच्छिन्नपरमेश्वरः सृष्टिलयहेतुः स एव गलो यस्य तमित्यर्थः। चिदम्बुधिमणिं-चेतनानामपि चेतनत्वात्। बुधहृदम्बुजरविम्। उक्तार्थः। परेति। परात्परः। चिदम्बरं ज्ञानाकाशस्वरूपमयं च जगदाकारेण विवर्तत इति नटवन्नटस्तं परचिदम्बरनटं हृति भजे ॥ १ ॥

भोलेनाथ भगवान शंकर की छटा अलौकिक है। ये चिदाकाशरूपी अपने स्वरूप में ही नटवत् नानारूप धारण किये हुए हैं, वे चिदम्बर नाम के स्थान में नटराज के रूप में स्थित हैं। संत पुरुष उन्हीं का पूजन कर उन्हें ही प्राप्त होते हैं। ये नटराज भगवान ताण्डवनृत्य में अपना एक पैर ऊपर उठाये और टेढा किये नृत्य कर रहे हैं जिस पर पहने हुए कटक भी झन-झन करते हुए नाच रहे हैं। ये मुझ पतञ्जलि (ऋषि) की और अञ्जलिबद्ध भक्तजनों की ज्ञानदृष्टि को स्वच्छ करनेवाला अञ्जन है, अथ च निरञ्जन है। उनका पद (धाम) अविचल है (नृत्य में पद-पैर भले चंचल हो) वे जन्मसंसार भञ्जनकारी हैं। कदम्ब के समान उन्नत एवं शोभायुक्त हैं। स्वयं आकाश में स्थित हैं। मेघमाला के समान उनका कण्ठ श्यामल है। चैतन्यसागर के वे देदीप्यमान मणि हैं। तत्त्ववेत्ताओं के हृदयकमल को प्रफुल्लित करनेवाला सूर्य हैं। उन चिदम्बरस्थ नटराज शंकर भगवान का हृदय में हम भजन करते हैं ॥ १ ॥

I hereby resort to the great dancer Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. He is called Hara (the Destroyer) who smashed the three cities (of demon Tripura). He is worshipped by good people. While dancing he has lifted one foot which is bent. His lovely bracelets are set in motion because of dance-movements and, hence, are making a jingling sound. He is like ointment to the eyes of Patanjali by whose application the vision gets clear for receiving knowledge. However,

he is free from contamination of any kind. He destroys the cycle of birth (and death). He possesses the loveliness of Kadamba tree, wears the garment of sky (i.e. not clad by any garments). His throat is dark like the multitude of rainy clouds he is the jewel in the ocean of consciousness, the Sun that causes the blooming of the lotus in the form of heart of wise persons. (1)

हरं त्रिपुरभञ्जनमनन्तकृतकङ्कणमखण्डदयमन्तरहितं
विरिञ्चिसुरसंहतिविचिन्तितपदं तरुणचन्द्रभुजगेन्द्रमुकुटम्।
परं पदविखण्डितयमं भसितमण्डिततनुं मदनवञ्चनपरं
चिरन्तनममुं प्रणवसञ्चितनिधिं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ २ ॥

('विरञ्चिसुरसंहितपुरन्दरविचिन्तितपदं तरुणचन्द्रमुकुटम्' इति क्वचित्पाठः। तत्रैव 'तरुणचन्द्रशिरसमि'त्यन्यत्र। विरञ्चि सुरसंहतिविचिन्तितपदं 'तरुणचन्द्रभुजगेन्द्रशिरसम्'इत्यपरत्र।)

एवं वर्णितस्य नटराजस्य प्रणवविषयत्वेन ध्यानात् सप्रणवजपाल्लभ्यं लाभमाह हरमिति। दुःखहरणम्, आसुरभावभञ्जनं, दयापीयूषवर्षणं, यमखण्डनं, कामदमनं चात्र फलत्वेनोच्यन्ते। तत्र शिष्टाचारप्रमाणत्वार्थं विरञ्चियादिचिन्तितत्वमुच्यते। स्वरूपमाहात्म्य-बोधनार्थमितरविशेषणम्। हरमिति। हरत्यज्ञानं, हरति दुःखं, हरति प्रलयकाले जगदुत वा हरस्तम्। इदमेव वा विशेष्यपदम्। तदा पूर्वत्रानुकृष्य योज्यम्। चिदम्बरनाम्ना प्रसिद्धे स्थले नटराजरूपेण स्थितं

शङ्करमुद्दिश्य भजनोक्तिरिति पक्षे तद् विशेषणपदम्। त्रिपुरभञ्जनं त्रिपुरासुरभञ्जनम्। त्रिपुरासुरस्य प्रसिद्धपुरत्रयभञ्जनकारिणमिति वा। अनन्तेन नागेन कृतं कङ्कणं येन सः, तमनन्तकृतकङ्कणम्। अखण्डा अखण्डनीया निरुपघाता निरन्तरप्रवाहिनी वा दया यस्य तमखण्डदयम्। अनन्तमन्तरहितम्। आद्यन्तरहितमिति यावत्। हरिविरिञ्चिभ्या-मुपर्यधोगताभ्याम् उभयानुपलम्भात्। विरिञ्चीति। विरिञ्चिश्च सुराणां देवानां संहतिः समुदायश्च ताभ्यां विचिन्तितं ध्यातं पदं यस्य तम्। तरुणेति। तरुणचन्द्रः षोडशी द्वितीयावा कला। तेन कृता भूषा भूषणं यस्य तादृशं शिरो यस्य स तथा तम्। चन्द्रमौलिमित्यर्थः। क्वचित्तरुणचन्द्र भुजगेन्द्रमुकुटमितिपाठः। द्वितीये सुरसंहत्यनन्तरं पुरन्दरेत्यधिकम्। तत्र शङ्करस्य मुकुटाऽप्रसिद्धेर्नेयार्थता स्यात्। 'मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकमि'ति कोशात् किरीटवाचित्वात्। जटामुकुटधारिणमित्यादौ जटैव मुकुटस्तद्धारिणमित्यर्थो न तु जटायां मुकुटं धरतीति। अथवा तरुणचन्द्रसंहितो भुजगेन्द्र एव मुकुटो यस्य स तथा तम्। जटायाः सर्पेण वेष्टनान्मुकुटवत् सर्पः प्रतीयते। तत्र मणिरिव च चन्द्रः प्रकाशत इति। उभयत्र तरुणचन्द्रशिरसमिति तरुणचन्द्रभुजगेन्द्रशिरसमिति च पाठश्चेत् सम्यक् स्यात्। नटनार्थं मुकुटधारणं वाऽस्तु। विरिञ्चीत्यादिना ध्येयत्वं तरुणेत्यादिना तत्प्रयोजकसौन्दर्यवत्त्वं च सूचितं बोध्यम्। पिपर्ति पालयति जगदिति परस्तं परम्। पदविखण्डितयमम्। पदेन पादप्रहारेण विखण्डितो नाशितो मारितो यमो यमराजो येन तम्। मार्कण्डेयरक्षणाय लिङ्गात् प्रादुर्भूय यमो हतः शङ्करेणेति कथानुसन्धेया। भसितमण्डिततनुं - भसितेन चिताभस्मना मण्डिता रूषिता तनुर्यस्य तम्। मदनवञ्चनपरम्। मदनस्य कामदेवस्य वञ्चनमत्र न्यक्करणं तत्परम्। परे तु वञ्चनशब्दस्यापभ्रंशो

'बचना' इति तथा च मदनात् स्वत्राणपरायणमित्यर्थलाभ इत्याहुः। पश्चात् स्वयमेव पार्वतीविवाहे मदनस्य स्वीकाराद्वञ्चनमात्रमुक्तम्। चिरन्तनमनादिमुत्पत्तिरहितम्। अज्ञानिनां विप्रकृष्टत्वादमुमित्युक्तिः। प्रणवसञ्चितनिधिम्। वेदादिस्वरेण सर्वार्थग्राहिणा संचितं महार्थनिधिमित्योंकारेणोपास्यत्वाभिव्यञ्जनम्। तथाविधं परचिदम्बरनटं हृदि भजे।

परब्रह्मपक्षे - हरमितयुक्तार्थम्। त्रिपुरभञ्जनम्। 'पुरत्रये क्रीडती'त्यादिश्रुतेः स्थूलसूक्ष्मकारणाख्यशरीरत्रयं पुरत्रयम्। तद्भञ्जनं तद्बाधेन तुरीयावस्थाप्रापणम्। अनन्तकृतकङ्कणम्। 'कङ्कणः करभूषायां सूत्रमण्डनयोरपि' इति मेदिनी। अनन्तेनाकाशेन स्वीयानन्तस्वरूपेण वा कृतं मण्डनं सौन्दर्यप्रसाधनं स्वस्य येन स तथा तम्। न ह्यन्तवतो भवितुमर्हति सौन्दर्यम्। अखण्डदयं व्याख्यातम्। सोपाधिकावस्थायां दयावत्त्वसत्त्वात्तेन रूपेण विशेषणमुपपन्नम्। अन्तरहितं - त्रिविधपरिच्छेदशून्यम्। विरिञ्च्यादिभिर्विचिन्तितं पदं धाम यस्य तम्। तरुणचन्द्रेत्यादि सोपाधिकावस्थाविशेषणं भूतपूर्वगत्या। अथवा तरुणचन्द्रः षोडशी कला नित्या श्रीविद्योच्यते। स्वाभिन्नया तया भूषितं शिर उत्तमाङ्गं परमस्थानं यस्य स तथा तम्। भुजगेन्द्रपदपाठे तु भुजगेन्द्रोऽनन्त एव। चदि आह्लादे इति धातुपाठात् तरुणचन्द्रः परमानन्दः। तथा च अनन्त-परमानन्दमुख्यस्वरूपमिति फलितार्थो बोध्यः। पदं व्याख्यातम्। पदविखण्डितयमम्। पदेन 'पदं व्यवसितित्राणस्थान-लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु'इत्यमरः। तद्धाम परमं ममेत्युक्तेन स्वस्थानेन व्यापकधाम्ना निरस्तो यमो मृत्युर्मृत्युसंसारो येन तम्। भसितमण्डिततनुम्। भसद्युतौ। ज्ञानद्युतिमण्डितस्वरूपमित्यर्थः। 'विशुद्धज्ञानदेहाये'ति स्मृतेः। मदनः कामस्तत्प्रयुक्तसंसारश्च। मादयति

उन्मादयति पुरुषमिति वा मदनो विषयानन्दः। तद्वञ्चनं तत्तिरस्करणं तत्परम्। चिरन्तनं सनातनम्। अमुमिति। 'यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्मे'ति श्रुतेरपरोक्षत्वेऽपि मायावशात् परोक्षकल्पो विप्रकृष्टकल्प इत्याशयेनेदम्। अर्थस्य शब्दवृत्तित्वात्तस्य वाचकः प्रणव इति प्रणवसञ्चितनिधित्वं बोध्यम्। एवंविधं परं चिदाकाशरूपमपि मायावशान्नटमिव नटं भजे ॥ २ ॥

भगवान शंकर का सामर्थ्य अपार है। ये जगत का संहार कर प्रलय करनेवाले एवं बाध कर कैवल्य दिलानेवाले हर हैं। त्रिपुरासुर एवं त्रिपुरासुरोपम तापत्रय के वे भंजनकारी हैं। अनन्त नाग को कंकण के रूप में हाथ पर लपेटे हुए हैं। तथा स्वयं अनन्त (अपार) भी हैं। उनकी दया की धारा अखण्ड रूप से बरसती रहती हैं। यही कारण है कि ब्रह्माजी एवं अन्य देवगण उन के चरणों का ही चिन्तन करते रहते हैं। उनके मस्तक पर जटाजूट शोभा पा रहा है जिस पर चन्द्रमा की चांदनी चमक रही है। पांव तले यमराज को उन्हों ने कई बार कुचल डाला था। भस्मभूषिताङ्ग, मदनान्तक, प्रणवार्थरूप, सनातन उन चिदम्बरस्थ नटराज का हम भजन करते हैं ॥ २ ॥

I heartly resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. He is the Destroyer of the world, who destroys sin and grants emancipation. He has destroyed the three Cities of Demon Tripura, representing the three types of sorrows. He is wearing the great Serpent, Ananta like a bracelet. He is

incessantly showering compassion and is endless. God Brahma and the assemblage of gods meditate upon his feet (or his position). His crown consists of the crescent moon and a prominent serpent. The Great One has crushed Yama by his feet. His body is decorated with ash. He is inclined to brush aside Cupid. His preciousness is saturated in the syllable - Om. (2)

अनन्तमखिलं जगदभङ्गगुणतुङ्गममलं धृतविधुं सुरसरित्-
तरङ्गनिकुरम्बधृतिलम्पटजटं शमनदम्भसुहरं भवहरम्।
शिवं दशदिगन्तरविजृम्भितकरं करलसन्मृगशिशुं पशुपतिं
हरं शशिधनञ्जयपतङ्गनयनं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ३ ॥

प्रणवजपं तदौपयिकध्येयस्वरूपं च फलपर्यन्तं निरूप्य अधुना नटनप्रयोजनं तदौपयिकरूपविशेषं तद्ध्यानफलं च वर्णयन् स्तौति अनन्तमिति। अखिलजगदयन्तं रक्षन्तमिति नटनप्रयोजनम्। तथा चाह गन्धर्वराजः पुष्पदन्तः 'जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता' इति। तत्र स्पन्दवार्तिकम् :-

पादन्यासैः प्रचिन्वन् क्षितिमनिलमनुप्रणयन् प्राणवेगै-
रर्णांस्यानिर्णिजानस्त्रिपथगतिजलैरग्निमक्षाग्निना च।
स्वर्लोकादीन् जटासंहतिहतिभिरलंभावयन् भूतनाथो
विद्याविद्योतकारी जयति घनजटामण्डलस्ताण्डवस्थः॥

इति। अधिकं षोडशे स्पन्दे। अभङ्गगुणतुङ्गम्। अभङ्गैः

अभज्यमानैरविनाशिभिरक्षीयमाणैर्गुणैस्तुङ्गमुत्कृष्टम्। नित्यज्ञानादिकं खल्वीश्वरस्य प्रसिद्धम्। न विद्यते भङ्गोऽन्तो येषां तेऽभङ्गा अनन्ता इत्यर्थः। अनन्तैर्गुणैस्तुङ्गमिति वा। अनन्तानां गुणानां मतिपरिच्छेद्यत्वायोगादेव - अमतम्। मतेरविषयम्। तथा चोक्तम्।

को वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥

इति। बुद्धेरविषयस्य बुद्धिविषयत्वं कर्तुं प्रवर्तमानो बालबुद्धिरित्यर्थः। अनन्तगुणयुक्तत्वादखिलजगदवनं सुकरं, तत्र च 'किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुनं किमाधारो धाता सृजती'त्यादि प्रश्नानां चानवसर एवाऽमतत्वादिति तात्पर्यम्। धृतविधुम्। धृतो विधुश्चन्द्रमाः चूडामणितया नटनार्थं सकल जगदाह्लादकरो जगदवनार्थं च येन स तथा तम्। सुरेति। सुरसरिद् - गङ्गा तदीयानां तरङ्गाणां निकुरम्बस्य समुदायस्य धृतिर्धारणं तत्र लम्पटा समुत्सुका जटा यस्य तम्। शिवेन सहाहं पृथिवीमुद्भिद्य पातालं यास्यामीति गर्वयुक्ताया गङ्गाया गर्वहरणपरत्वद्योतनार्थं लम्पटत्वविशेषणम्। नटनसमये तदुच्छलनसमुद्भूतभागीरथीजलेनैव सागरपूरणात्तत एव मेघाद्युत्पत्तेः जगद्रक्षणौपयिकत्वं चात्र सूचितम्। शमनदम्भसुहरम्। शमनस्य यमस्य दम्भः सशिवलिङ्ग-मार्कण्डेयबन्धनधाष्ट्यात्मकस्तं सुष्ठु हरतीति तथा तम्। अकालमरणादिरपि शमनदम्भ एव तद्धरणमपि जगद्रक्षणान्तर्गतमेव। भवहरम् - संसारदुःखहरणकारिणम्। शिवम् - आनन्ददायिनम्। शिवमिति विशेष्यपदं योगरूढम्। दशदिगन्तरविजृम्भितकरम् - नृत्यसमये भ्रामणेन दशदिगन्तरे

विजृम्भिताः व्याप्ताः करा यस्य तम्। पञ्चवक्त्रस्य दशहस्तत्वाद् वा दशदिगन्तरविजृम्भिकरत्वम्। करलसन्मृगशिशुम्। करे लसन् मृगशिशुर्यस्य तम्। 'परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नमि'ति प्रसिद्धेः। पशुपतिं - पशूनां प्रमथानां पतिम्। पशुर्मृगादौ छगले प्रमथे च पुमानयम् इति रभसः। पशूनां जीवानां पतिमिति वा। पशूनां पाशबद्धानामुपगतानां रक्षयितारमिति वा। मिथ्याज्ञानाऽधर्मासक्ति-हेतुच्युतिभिः पशुत्वं जीवानाम्। मलकर्ममायारोधशक्तिबिन्दवः पाशा उच्यन्ते। हरं व्याख्यातम्। शशीति। शशी चन्द्रः। धनञ्जयो वह्निः। पतङ्ग सूर्यः। 'पतङ्गः पक्षिसूर्ययोः' इति कोशात्। एते नयनानि यस्य तम्। 'विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रमि'ति प्रसिद्धेः। एवंभूतं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ३ ॥

ब्रह्मपक्षेः- अखिलं जगदवन्तं, 'येन जातानि जीवन्ति' इति श्रुतेः। अभङ्गगुणतुङ्गम् - अभङ्गैर्भङ्गरहितैर्गुणैस्तुङ्गं वरणीयत्वेनोत्कृष्टम्। सन्ति ह्यानन्दादयो गुणाः परब्रह्मणि, ते चाऽपृथक्त्वेऽपि गुणवद् भासन्ते तथा चोक्तं पञ्चपादिकाकृद्भिः 'आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्मा अपृथक्त्वेऽपि पृथगिवावभासन्त' इति अमतम्। 'यन्मनसा न मनुते' 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनस सह' इत्यादिश्रुतेः। धृतविधुमिति। 'विधुः शशाङ्के कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे' इति विश्वः। जगद्रक्षणाय धृतहृषीकेशरूपमित्यर्थः। विशेषेण धीयते पीयते 'धेट् पाने'कुः। विधुरानन्दो धृतो येनेति वा। आह्लादकारित्वं विधोः प्रसिद्धम्। सुरसरिदिति। ब्रह्मद्रवत्वेन रूपेण हि प्रसिद्धा गङ्गा। सुरसरित्तरङ्गाणां धृतौ धारणे लम्पटा जटा मूलं माया तदिच्छा वा यस्मिंस्तम्। 'मूले

लग्नकचे जटा' इत्यमरः। शङ्कराभिन्नत्वाद्वा विशेषणोपपत्तिः। शमनदम्भसुहरम्। शमनस्य मरणलक्षणसंसारस्य प्रयोजको यो दम्भः कापट्यमन्यथा भूतस्यान्यथाप्रदर्शनात्मको मायाशब्दितस्तस्य नाशकम्। अत एव भवहरं फलतश्च शिवं मोक्षस्वरूपं तुरीयावस्थात्मकम्। दशेति। दशसु दिगन्तरेषु सर्वत्रेति यावत् विजृम्भिता विस्तारिताः कराः किरणाः ज्ञानकिरणा जीवात्मरूपा यस्य स तथा तम्। 'प्रज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्य लोकानि'त्याचार्याः। करलसन्मृगशिशुम्, 'करो वर्षोपले पाणौ रश्मौ प्रत्ययशुण्डयोरि'ति मेदिनी। करेषु प्रत्ययेषु लसन्तो मृगशिशवो मृग्यमाणस्वरूपाल्पभागा यस्य तम्। प्रतिबोधविदितमिति श्रुतौ बौद्धप्रत्ययेषु सर्वत्र ब्रह्मण एव सावच्छिन्नं रूपं प्रकाशविधया भासत इति सिद्धान्तितत्वात्। ब्रह्मरूपं च मृग्यमाणत्वन्मृगशब्दितम्। सोऽन्वेष्टव्य इति श्रुतेः। 'मार्गणं मृगणा मृग' इत्यभरः। पशुपतिम्। व्याख्यातम्। पश्यन्तीति पशवो जीवा ज्ञानस्वरूपास्तेषां पतिं पूर्णज्ञानस्वरूपमिति वा। हरं, व्याख्यातम्। शशीति। चन्द्राग्निसूर्याणां नेतारम्। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वमि'ति श्रुतेः। शशिप्रभृतयो नयनानि दर्शकानि यस्येति वा। 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकमि'ति भगवद्वचनाच्चन्द्रादितेजोरूपोपासनया परमात्मदर्शनलाभो लभ्यते। चन्द्रादिषु विशेषेण परमात्मन उपलभ्यमानत्वाद्वा। एवंभूतं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ३ ॥

भगवान शिव का अन्तःसौन्दर्य भी अनुपम है। वे हर होने पर भी समस्त जगत के रक्षक हैं। शाश्वत सद्गुणों से सर्वोपरि है। चन्द्रमा को धारण कर सब को आल्हाद पहुंचाते हैं। उनकी जटायें संसार को पवित्र करने के लिये मानो गङ्गा की तरंगो को पकड

रखने में लम्पट सी हो गयी हैं। यमराज के दम्भ को (मारने के दिखावे को) निरस्त कर उन्हों ने भक्तों को अमरत्व प्रदान किया। अत एव भवहारी भी हुए। नृत्य समय में दश दिशाओं में हाथ घुमाते हुए - फैलाते हुए मानो वे सर्वतो रक्षा कर रहे हैं। हाथ में मृग शिशु को धारण किये हुए हैं। चन्द्र, अग्नि एवं सूर्य ये उन के तीन नेत्र हैं। पाशबद्ध जीवात्मरूपी पशुओं के पति, सर्व दुःखहारी, परम मंगलकारी, चिदम्बरस्थ उन नटराज का हम भजन करते हैं ॥ ३ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva residing in the holy place, Chidambaram, who protects all the world. His lofty place is due to his indestructible good qualities. It is difficult to grasp his nature. He has held crescent moon on his forehead. His matted hair is covetous of holding the multitude of waves of the divine river, Ganga. He has dispelled the vanity of Yama and is capable of delivering men from the pangs of wordly life. The lord of Creatures, the auspicious God, in whose hand the young deer is dancing, has spread his hands in all the ten quarters. The Great Destroyer has Moon, Fire and Sun as his eyes. (3)

अनन्तनवरत्नविलसत्कटककिङ्किणिझलंझलझलंझलरवं
मुकुन्दविधिहस्तगतमद्दललयध्वनिधिमिद्धिमितनर्तपदम्।
शकुन्तरथबर्हिरथ *नन्दिमुखशृङ्गिरिटिभृङ्गिगणसङ्घनिकटम्

सनन्दसनकप्रमुखवन्दितपदं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ४ ॥

उपक्रान्तं नटस्वरूपमुपसंहरन् स्तौति अनन्तेति। ताण्डवेऽनन्तैरसंख्यैर्नवरत्नैर्विलसतां शोभमानानां कटकानां किङ्किणीनां झलञ्झलझलञ्झलेत्यव्यक्तरूपो रवो ध्वनिर्यस्य स तथा तम्। मुकुन्देति। मुकुन्दस्य विष्णोः, विधेः कमलासनस्य च हस्तगतयोः मद्दलयोर्लयतालध्वनिर्यस्तेन धिमिद्धिमितं तादृशाव्यक्तशब्दयुक्त नर्तनपदं यस्य स तथा तम्। शकुन्तेति। शकुन्तो गरुडो रथो रथचिह्नं वा यस्य स विष्णुः। बर्हिर्मयूरो रथो रथध्वजो वा यस्य स कार्तिकेयः। नन्दिमुखा नन्दिरेव मुखेऽग्रे येषां ते शृङ्गी च रिटिश्च भृङ्गी चेत्येवंविधा गणास्तेषां संङ्घः 'गणानां त्वा गणपतिमि'ति 'उमासहायो देवेशो गणैश्च बहुभिर्वृतः' इत्यादिप्रयोगदर्शनाद् रुद्रानुचरा गणाः। स च स च स च निकटे यस्य सः तथा तम्। विष्णुः सुहृत्त्वेन कार्तिकेयः पुत्रत्वेन नन्दिमुखशृङ्ग्यादिर्गणसंघः सेवकत्वेन निकटे स्थिता इति विवेकः। केचित्तु कोशव्याख्यायां शृङ्ग्यादयो नन्दिपर्यायत्वेन व्याख्याताः। किन्तु पुराणेषु तेषां पृथग्गणनादर्शनान्न नन्दिपर्यायत्वं शृङ्ग्यादिशब्दानामिति द्रष्टव्यम्। सनन्देति। सनकसनन्दनादिमहर्षि-र्वन्दितचरणम्। परचिदम्बरनटं हृदि भजे।

'परब्रह्मपक्षे - अनन्तेति। अनन्तैर्नवनवै रत्नै - रतिभिरानन्दांशैर्विलसतां कटकानां रुद्रसेनानामल्परुद्ररूपाणामानन्द-मयवृत्तीनां वा कमानन्दं कणयतीति कङ्कणयः। अणरणगतौ।

---

*नदन्तिमुखभृङ्गिरिटि - इति पाठान्तरम्।

मित्वाद्ह्रस्वः। कङ्कणय एव किङ्किण्यश्च। यद्वा तेषां कटकानामानन्दवतामपि किं किमिति - किमिदं किमिदमित्याश्चर्यं नयन्तीति किङ्किणयस्तदीयझलञ्झलरवो यस्य स तथा तम्। यदा किल रुद्रसेना सानन्दापि मूलभूतानन्दाभिमुखा भवति तदा तदानीन्तनवृत्तयः परमानन्दं गमयन्तीत्यानन्दरवं ते कुर्वन्ति। एवमानन्दमयवृत्तयोऽपि मूलभूतमानन्दं यदा विषयीकुर्वन्ति तदाऽऽश्चर्यचकिता झलञ्झलरवं कुर्वन्तीव। 'यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निज्यामृतमये' इति हि गन्धर्वराजः। अथवाऽनन्तनवनव-रतिभिर्विलसन्ति येऽभ्यासिनो नादाभ्यासपरायणास्तेषां कट एव कटकोऽतिशयितः किङ्किणीशब्दो झलञ्झलशब्दश्च श्रवणविषयो भवति यदीयः स तथा। 'कटः श्रोणौ द्वयोः पुंसि कलिञ्जेऽतिशये शवे' इति मेदिनी। नादानुसन्धायिनां किङ्किणीवीणाझर्झरमेघादि-शब्दश्रवणं प्रसिद्धम्। किं च मुकुन्देति। मुकुन्दविधी-अकारोकारौ तदीयहस्तगतः - तदधीनः। मदं दलयतीति मद्दलो मकारः। तल्लयध्वनयः 'तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिरि'त्यत्रोक्ताः, धिमिद्धिमितं जगन्नर्तनाधिष्ठानपदं परमधाम यस्य स तथा तम्। शकुन्तरथाद्या व्याख्यातास्ते निकटे यस्य तेषां निकटो वा यस्तम्। ज्ञानिनामात्मत्वाददतिनिकटः परमात्मा। अज्ञानिनामेव सोऽतिदूरे। तदुक्तम् - 'तद्दूरे तद्वन्तिके' इति। अधिकारस्थानां प्रायोऽधिकारसमाप्तौ मोक्षप्राप्तिप्रसिद्धेः। एवंविधं सनन्दादिवन्दितपदं परचिदम्बरनटमहं हृदि भजे ॥ ४ ॥

भगवान शंकर के ताण्डवनृत्य की शोभा तो अनिर्वचनीय ही है। एक ओर अनेकानेक नव-नव रत्नों से शोभित कटक एवं झन-झन आवाज करती हुई करधनी से आंखों को आनन्द पहुंचा रहे

है तो दूसरी ओर विष्णु एवं ब्रह्मा के हस्तगत ढोलक की धिम् धिम् आवाज से कानों में मधु धारा बहा रहे हैं। ढोलक ध्वनि के ताल के अनुसार पांव से ताल ठोकते हुए आंख, कान और हृदय में उल्लास भर रहे हैं। तभी तो विष्णु, कार्तिकेय, नन्दीश्वर, गजानन, भृंगी एवं रिटि आदि सभी निकट खडे हैं और झूम रहे हैं, सनक सनन्दादि बार बार वन्दना कर रहे हैं। चिदम्बरस्थ उन नटरज भगवान का हम भजन करते हैं ॥ ४ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. The tiny bells attached to his bracelets which are shining with innumerable gems of nine kinds are making sweet jingling sound. The dancing movements of his feet are accompanied by the drum in the hands of Mukunda (Vishnu) and Vidhi (Brahmadeva) making rhythmic sound. He is closely surrounded by Vishnu, riding a chariot to which a bird (Garuda) is yoked, by Kartikeya, riding a chariot to which a peacock is yoked, by a troupe of Gana-s consising of Sringi, Riti, Bhrungi etc, headed by Nandi. Prominent sages like Sananda and Sanaka are saluting his feet. (4)

अनन्तमहसं त्रिदशवन्द्यचरणं मुनिहृदन्तरवसन्तममलम्
कबन्धवियदिन्द्ववनिगन्धवहवह्निमखबन्धुरविमञ्जुवपुषम्।
अनन्तविभवं त्रिजगदन्तरमणिं त्रिनयनं त्रिपुरखण्डनपरम्

सनन्दमुनिवन्दितपदं सकरुणं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ५ ॥

एवं चतुर्भिर्नटारजस्य नटनं तत्फलभूततद्धेतुं तदुपासनं च निरूप्याधुना भगवन्तमष्टमूर्तिरूपेण तथा ध्येयत्वाय स्तौति - अनन्तेति। अनन्तम् आद्यन्तरहितं महस्तेजो यस्य तम्। त्रिदशवन्द्यचरणं - त्रिदशैर्देवैर्वन्द्यौ चरणौ यस्य तम्। मुनिहृदन्तरवसन्तं - मुनीनां हृदन्तरे हृदयमध्ये वसन्तं निवसन्तम्। यद्वा मुनिहृदये कुसुमोल्लासिवसन्तर्तुरूपम्। अमलम् पापरहितम्। कबन्धेत्यादि अष्टमूर्तिमित्यर्थः। तत्र कबन्धो जलम्। वियद् - आकाशः। इन्दुश्चन्द्रः। अवनिः पृथिवी। गन्धवहो वायुः। वह्निः प्रसिद्धः। मखबन्धुः - यज्ञबन्धुर्यजमान आत्मा। रविः सूर्यः एते एव मञ्जूनि वपूंषि यस्य तम्। अनन्तविभवम् - अनन्तवैभवसम्पन्नम्। 'सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहिताम्' इति वचनात्। 'विभवो धननिर्वृत्योः' इति हैमः। त्रिजगदन्तरमणिम्। जगत्रये मणिवदुत्कृष्टं भासमानं वा। त्रिनयनं नेत्रत्रयवन्तम्। त्रिपुरखण्डनपरं व्याख्यातम्। सनन्देति गतार्थम्। सकरुणं करुणापूर्णं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ५ ॥

ब्रह्मपक्षे प्रायः समानम्। अनन्तं महो ज्ञानज्योतिर्यस्य। त्रिदशेत्युक्तार्थम्। तिस्रो दशाः श्रवणमनननिदिध्यासनरूपा येषां तैस्तत्त्ववेदिभिर्वन्द्यपदमिति वा। मुनीति। गतार्थम्। मुनिर्ध्येयम्। अमलम् - अविद्यादिमलरहितम्। कबन्धेत्यादि। 'यस्य पृथिवी शरीरं' 'यस्यापः शरीरम्' इत्यादि श्रुतेः। उपलक्षणं चेदं श्रुत्युक्तानां सर्वेषाम्। यद्वा पञ्चभूतात्मकं जगत्। यस्यात शरीरमिति जीवात्मपरिग्रहः। सूर्यचन्द्रयोः पृथगग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। कालस्य पृथक्त्वमते तत्सङ्ग्रहार्थं

वा। अनन्तविभवम् - अनन्तानन्दम्। त्रिजगदन्तरमणिं - सर्वसाक्षिणम्। त्रिनयनमिति। त्रिवेदीदिव्यचक्षुष इति वचनाद् वेदत्रयनयनं, वेदत्रयप्रतिपाद्यं वा। त्रिपुरेत्यादिकं व्याख्यातार्थम्। एवंविधं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ५ ॥

महेश्वर भगवान के उपासनीय रूप भी अति गहनीय हैं। चारों ओर अनन्त कान्ति फैल रही है। देवता चरणवन्दना कर रहे हैं। मुनियों के हृदय तो उनके वासस्थान ही बन रहे हैं, जल, आकाश, चन्द्रमा, पृथिवी, वायु, अग्नि, आत्मा एवं सूर्य ये आठ उनके शरीर के रूप में भास रहे हैं और वे अष्टमूर्त्ति हो रहे हैं। अनन्त वैभवसम्पन्न तीनों जगत के अंदर रहकर सबको प्रकाशित करनेवाले मणिस्वरूप, अमल, त्रिनयन, त्रिपुरारि, सनन्दनादि से उपासित करुणामय उन चिदम्बरस्थ नटराज का हम भजन करतें हैं ॥ ५ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram, whose lusture is beginningless and endless. His feet are revered by the gods. The pure one who is free from all blemishes resides in the interior of sages' hearts (or is like spring-time to the heart of hearts of sages). He wields a lovely body made up of the following components - water, sky, moon, earth, wind, fire, sacrificer (atman) and Sun. His riches are infinite; he is the jewel of the three worlds having three eyes, he is inclined to smash the three cities

of Demon Tripura. The god who takes pity (on the distressed) is saluted by Sage Sananda. (5)

अचिन्त्यमलिवृन्दरुचिबन्धुरगलं कुरितकुन्दनिकुरम्बधवलं
मुकुन्दसुरवृन्दबलहन्तृकृतवन्दनलसन्तमहिकुण्डलधरम्।
अकम्पमनुकम्पितरतिं सुजनमङ्गलनिधिं गजहरं पशुपतिं
धनञ्जयनुतं प्रणतरञ्जनपरं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ६ ॥

स्वरूपतः कार्यतश्च परमसुन्दरं सफलनमस्कारं द्योतयन् स्तौति। अचिन्त्यमित्यादि। स्वानुभववेद्यत्वात्केवलचिन्तनाऽविषयमचिन्त्यम्। अलीति। अलयो भ्रमराः श्यामवर्णास्तेषां वृन्दस्य रुचिर्निरन्तरश्यामता तया बन्धुरो मनोहरो गलः कण्ठो यस्य तं नीलकण्ठम्। एतेन हालाहल - भक्षणजनितकालिमद्योत्यपरमकृपावश्यताऽभिहिता। 'अकाण्डब्रह्माण्ड - क्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्ये'त्यादि महिम्नस्तोत्रे। अलिः कोकिलेपीति शब्दरत्नावली। कोकिलवृन्दस्य रुचिः स्वरमधुरिमा। तेन बन्धुरो गलो रागप्रवर्तकत्वाद् यस्य स इति वा। कुरितेति। 'कुरशब्दे'। कुरितं शब्दितम्। स्वीयसुगन्धाऽऽहूतभ्रमरादिशब्दयुतं यत् कुन्दपुष्पनिकुरम्बं तद्वद् धवलम्। प्रफुल्लकुन्दपुष्पधवलमित्यर्तः। स्फुरितेति पाठः सुगमः। कुरधातोरेव कोरकशब्दनिष्पत्तेस्तत्र भूतार्थप्रत्ययेन प्रफुल्लार्थलाभाद् वा। या कुन्देन्दुतुषारहारधवलेत्यादि प्रयोगदर्शनाद् धवलवर्णस्य कुन्दपुष्पोपमा युज्यते। अथवा गलेति दीर्घः पाठः। अलिवृन्दरुचि - बन्धुरगलाङ्कुरितकुन्दनिकुरम्बधवलम् इत्येकपदम्। अलिवृन्द-रुचिबन्धुरगलाङ्कुरितं यत् कुन्दपुष्पं तद्वत् धवलमित्यर्थः। गलेनाङ्कुरितमित्यत्राभेदे तृतीया। तादृशगल एवाङ्कुररूपेण यत्र वर्त्तत

इति। तादृशगलरूपो योऽङ्कुरः स सञ्जातोऽत्रेति वा। 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्'। विशुद्धज्ञानदेहत्वसूचनाय कुन्देत्यादि विशेषणम्। अलिवृन्दो यथा कुन्दनिकुरुम्बे तथा नीलगलो धवलशरीरे शोभते। तथैव माया विशुद्धज्ञानस्वरूपपरमात्मैकदेशेऽनादिकल्पितेति वा सूच्यते। यथा चालिवृन्दं न कुन्दपुष्पस्य वास्तविकं रूपं किन्त्वागन्तुकमेव। एवं ब्रह्मणि मायातमोऽप्यागन्तुकमेव, नत्वग्न्यौष्ण्यवत्स्वभावसिद्धमिति तस्य नाश्यत्वं संभवतीति ध्वन्यते। अपि च सरसे हि पुष्पे भ्रमराः परिभ्रमन्तीति तद्वद् भगवतः शंकरस्य शरीरं ध्यातॄणां रसप्रदमिति सूच्यते। मुकुन्देति। मुकुन्दश्च सुरवृन्दं च बलनामकासुरहन्ता इन्द्रश्च। 'बलारातिः शचीपतिरि'त्यमरः। तैः कृतेन वन्दनेन लसन्तं शोभमानं समुल्लसन्तं वा। मुकुन्दः किल प्रद्युम्नापहरणसमनन्तरं पुत्रार्थं शङ्करमतोषयत्। ततश्च साम्बशिवः प्रसन्नः पुत्रार्थं वरं ददौ। तस्य पुत्रस्य नाम साम्ब इति प्रसिद्धम्। एवं त्रिपुरतारकाद्युत्पातसमये सुरवृन्दादिस्तुतत्वमपि। अहिकुण्डलधरम्। कर्णयो सर्पकुण्डलधारिणम्। तथा चाहीनामपि महीयस्त्वमीश्वरश्चकार। घोराहिधारणेऽप्यकम्पम्। भयरहितम्। स्वावस्थाप्रच्युतिरहितं वा। अनुकम्पितरतिम्। अनुकम्पितेषु भक्तेषु रतिर्यस्य अनुकम्पितान्तं रतिर्यत्र वा तम्। अनुकम्पिता रतिः कामपत्नी पार्वतीविवाहसमये कामपुनःशरीरत्वाय येन तमिति वा। अनुकम्पितमनुकम्पनं भावे क्तः तत्र रतिर्यस्य तमिति वा। सुजनमङ्गलनिधिं - सुजनानां सतां यानि मङ्गलानि सम्भावितानि तेषां निधिं सकलमङ्गलास्पदं शिवरूपत्वात्। सुजनानां मङ्गलं निदधातीति वा। सुजनमङ्गलकारिणमित्यर्थः। गजहरम्। गजो गजासुरः। तस्य हन्तारम्। गजासुरं हत्वा तदीयं चर्म दधार भगवान शङ्कर इति। तत्रापि कृपैव मूलमिति द्रष्टव्यम्। पशुपतिम्। पशूनां जीवानं पाशबद्धानां पतिं

रक्षकमिति करुणाऽत्रापि सूच्यते। धनञ्जयनुतं - तपस्यता धनञ्जयेन पार्थेन स्तुतं यतश्च पाशुपतास्त्रप्राप्तिरर्जुनस्याभवदिति कृपावत्त्वमत्रापि। सर्वं संगृह्याह प्रणतरञ्जनपरम्। प्रणतानां रञ्जनमानन्दापादनमेव परं यस्य स तथाविधं परचिदम्बरनटमहं भजे ॥ ६ ॥

ब्रह्मपक्षे तुः- अचिन्त्यं मनोऽविषयतवाद्। अलीति। 'गल अदने'। गलति अत्ति अनेन प्रलयकाले सर्वं जगदिति गलः। स चालिवृन्दरुचिः कृष्णवर्णस्तेन बन्धुरः। तमोगुणरूपः। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामिति श्रुतेः। 'प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः' इति च गन्धर्वराजः। कुरितेति। रक्षणकाले सत्त्वगुणावच्छेदात्। उक्तश्रुतौ शुक्लेत्यनेन सत्त्वगुणोक्तेः। मुकुन्देति। मुकुन्दादिभिर्महद्भिः कृतवन्दनश्च स्वयं लसंश्च स्वयंप्रकाशमान इति यावत् तम्। अहिकुण्डलधरम्। अहिः सर्पः संकषर्णाख्यः। शक्तिरूपः। स कुण्डलाकारेण परिस्पन्दनेन (वैबरेशन् इत्याख्येन) सर्वं जगत् सृजतीति तादृशसंकर्षण-शक्तिधरमित्यर्थः। संकर्षणशक्तेरेव परिस्पन्दो न स्वस्येत्याह - अकम्पमिति। अकम्पनप्यनु पश्चात् कम्पितमिति विरोधाभासः। अनुकम्पितानां रतिर्यत्र तम्। सुजनेति। 'ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुरि'ति स्मृतेः। गजहरम् 'गजमदने' मदहरणम्। शिष्टं व्याख्यातार्थम् ॥ ६ ॥

शंकर भगवान के सुन्दररूप की छटा तो अवर्णनीय है। अचिन्त्य है। कण्ठ से भ्रमर समूह के समान वे नीलवर्ण के हैं। शरीर से खिले हुए कुन्द पुष्प के समान धवल वर्ण के हैं। विष्णु भगवान, देववृन्द एवं इन्द्रादि लोकपाल उस दिव्यरूप को निहार कर भावपूर्ण होकर वन्दना कर रहे हैं। कानों में सर्प को कुण्डलरूप में धारण

कर रखा हैं। कामारि होने पर भी कामपत्नी रति पर अनुकम्पा करते हैं अथ च निश्चल भी हैं। स्वजन मंगलकारी, गजासुरवधकारी उन्हीं पशुपति की अर्जुन ने आराधना कर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। प्रणतसुखकारी, चिदम्बरस्थ नटराजरूपधारी उन शंकर भगवान का हम भजन करते हैं ॥ ६ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva residing in the holy place, Chidambaram. (Being an object of direct vision) he is not capable of being understood by the faculty of thinking. His dark-coloured throat is attractive with its resemblance to the colour of a multitude of bees. His complexion is white like a bunch of blooming Kunda flowers. He wears a glittering appearance when saluted by Vishnu, gods and Indra, the killer of Balasura (बलासुर). His ear-ornament consists of serpent. He is free from fear and, hence, unmoved. However, he took pity on Rati. He is a reservoir of all auspicious things for good persons. The destroyer of Gajasura is the Lord of Creatures, praised by Arjuna. He is inclined to be delightful to persons who bow down to him. (6)

परं सुरवरं पुरहरं पशुपतिं जनितदन्तिमुखषण्मुखममुं
मृडं कनकपिङ्गलजटं सनकपङ्कजरविं सुमनसं हिमरुचिम्।
असङ्गमनसं जलधिजन्मगरलं कवलयन्तमतुलं गुणनिधिं
सनन्दवरदं शमितमिन्दुवदनं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ७ ॥

सर्वश्रेष्ठत्वेन परमदयावत्त्वेन चाधुना स्तौति - परमिति। परं श्रेष्ठं सर्वेषु। सुराणां वरं महादेवम्। पुरहरं व्याख्यातं जगत्क्षेमार्थतया। पशुपतिम्। दन्तिमुखो गणेशः। षण्मुखः कार्तिकेयस्तौ जनितौ विघ्नवारणार्थं देवसेनानयनार्थं चेति जनितदन्तिमुखषण्मुखम्। अज्ञानिनां विप्रकृष्टत्वादमुम्। परलोकस्थम् कैलासवासिनम्। सुखहेतुत्वान्मृडम्। कनकवत् पिङ्गला जटा यस्य तम्। सनको ऋषिः स एव पङ्कजं तदुल्लासकारिरविं सनकपङ्कजरविम्। सर्वप्राणिषु सौमनस्ययुक्तं सुमनसम्। हिमवद् धवलरुचिं हिमरुचिम्। पार्वत्यादिष्वप्यसङ्गं मनो यस्य स तमसङ्गमनसं जगद्रक्षणाय जलधिजन्मगरलं हालाहलं कवलयन्तं भक्षयन्तम्। अतुलं न विद्यते तुला तुलना यस्य तमतुलं गुणनिधिं सनन्दनाम्न ऋषेर्वरदम्। शमितं शं कल्याणमितं प्राप्तं शिवम्। इन्दुर्वदने शिरसि यस्य तम्। इन्दुवदानन्ददं वदनं यस्येति वा। परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ७ ॥

ब्रह्मपक्षे - परमक्षरात् परतः परम्। सुरवरम्। सुरैर्व्रियमाणत्वात्। सुष्ठु रान्ति यज्ञादाविति सुरास्तेषां वररूपत्वाद्वा। पुरहरं जाग्रदादिपुरत्रयहरम्। पश्यन्तीति पशवः तेषां पतिं सर्वदर्शिनं पशुपतिम्। विघ्नहननो दन्तिमुखः। देवसेनानीः - परमार्थमार्गप्रदर्शकः षण्मुखः। षडङ्गवेदो वा। यज्ञादिप्रवर्तकः वेदशास्त्रप्रवर्तकश्च तम्। मृडं मृडनात्। कनकपिङ्गलजटं हिरण्यगर्भरूपेण स्थितम्। सनकेत्यादि व्याख्यातम्। शोभनमनोगम्यत्वात्सुमनसम्। शुद्धत्वाद् हिमरुचिम्। असङ्गमनोगम्यत्वाद् असङ्गमनसम्। संसारजलधि-जन्माऽविद्याकामकर्मादिगरलं कवलयन्तं नाशयन्तम्। 'न त्वत्समोऽस्ती'त्युक्तेरतुलम्। आनन्दादिगुणनिधिम्। तानन्यत्र विषये निदधातीति वा। सनन्दवरदम्। शं मङ्गलस्वरूपमितं

प्राप्तम्। इन्दुवदानन्ददं वदनं मुखं स्वरूपं यस्य तम्। परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ७ ॥

भगवान शंकर का शील स्वभाव भी अतिविशाल हैं। वे परम सुरवर महादेव तो हैं ही। त्रिपुररूपी तापत्रय का हरण कर पाशबद्ध जीवरूपी पशुओं के पालनकर्ता पति भी हैं। कार्तिकेय तथा गणेश के जन्मदाता होने पर भी असंग चित्त हैं सकल सुखकारी मृड हैं। सुवर्णवर्ण पीत जटाधारी हैं एवं सनकादिरूप कमल के सूर्य हैं। सब के प्रति स्निग्धभाव सौमनस्य रखते हैं, तभी तो सुमना, सागरमन्थन से उत्पन्न अतिभयानक हलाहल को पी गये थे। हिम के समान धवलवर्ण, गुणों के सागर, अनुपम, सनकादि ऋषिओं के वरदाता, चन्द्रवदन, मंगलमय उन चिदम्बरस्थ नटराज का हम हृदय से भजन करते हैं ॥ ७ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. He is the best among gods, destroyer of the three cities for the benefit of the world. That Lord of Creatures has given birth to elephantheaded Ganesha for warding off obstacles and to six-faced Kartikeya for leading divine army. The benevolent god has hair that is brownish like gold. He is like Sun who causes the blooming of the lotus in the form of sage Sanaka. Having a mind that is kind to all, he wields the lustre of snow. His mind is not attached

to anything, even to Parvati. He has swallowed poison arising out of ocean in order to save the world from its adverse effects. He is a store-house of qualities, not comparable to anything else. He has given boons to sage, Sananda. Having a face which is delightful like the moon, he has attained the blissful state. (7)

अजं क्षितिरथं भुजगपुङ्गवगुणं कनकशृङ्गिधनुषं करलसत्
कुरङ्गपृथुटङ्कपरशुं रुचिरकुङ्कुमरुचिं डमरुकं च दधतम्।
मुकुन्दविशिखं नमदवन्ध्यफलदं निगमवृन्दतुरगं निरुपमं
सचण्डिकममुं झटितिसंहृतपुरं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ८ ॥

असम्भवरथस्थाऽसम्भवधनुर्बाणादिभिरेव मां हन्यादिति त्रिपुरवरं पूरयितुं 'रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरि'त्यादिरीत्या कृतेन विलक्षणरथादिना त्रिपुरहरं स्तौति - अजमिति। अजं जन्मरहितम्। क्षितिरथं - क्षितिः पृथिवी रथो यस्य तम्। भुजगपुङ्गवगुणं भुजगपुङ्गवो वासुकिरेव धनुषो गुणो यस्य तम्। नागयज्ञोपवीतमिति वा। कनकशृङ्गिधनुषं - कनकशृङ्गी सुवर्णपर्वतः सुमेरुः स एव धनुर्यस्य तम्। 'अगेन्द्रो धनुरथो' इत्युक्तेः। ननु धनुरन्तस्य बहुव्रीहेः 'धनुषश्चे'त्यनङादेशे कनकशृङ्गिधन्वानमिति-रूपेण भाव्यम्। असंज्ञात्वेन 'वा संज्ञायामि'ति सूत्राप्रवृतेः। सत्यम्। समासान्तस्यनित्यत्वादुपपत्तिः। न चैवं 'संज्ञायामि'ति विकल्पविधान-वैयर्थ्यम् क्वचित्प्रयोगानुसारेण समासान्ताऽकरणमेव तदनित्यत्वम्। न तु सर्वत्र विकल्प एवेति तत्सार्थक्योपपत्तेः। करेति। करेषु लसन्तः कुरङ्गो मृगश्च पृथुर्विशालष्टङ्कश्च परशुश्च यस्य तम्। रुचिरेति

रुचिरकुङ्कुमस्य रुचिं दधतं डमरुं च दधतम्। कुङ्कुमचन्दनलेपितलिङ्गमिति प्रसिद्धेः। रुचिरकुङ्कुमस्य रुचिरिव रुचिर्यस्य तमिति विग्रहस्तु दुर्घटः। हिमरुचिमिति पूर्वोक्तेः। न चैवमपि रुचिपदवैयर्थ्यम्। कुङ्कुमापसरणकालेऽपि तदीयलौहित्यावशेषदर्शनात्। अथवा क्षितिरथमित्यादिना युद्धसंनाहवर्णनाद् युद्धाय निर्गमनकाले कुङ्कुमधारणप्रसिद्धेः रुचिरकुङ्कुमस्य रुचिः शोभा यस्मिंस्तमिति बहुव्रीहिरेवास्तु। न चैवं डमरुकं चेति चकारवैयर्थ्यापत्तिः। डमरुकं दधतं चेति व्यत्ययेनान्वयात् पूर्व विशेषण समुच्चायक तयो पपत्तेः। मुकुन्दविशिखं - मुकुन्द एव विशिखो बाणो यस्य तम्। 'रथचरणपाणिः शर इती'ति प्रसिद्धेः। नमदवन्ध्यफलदम्। नमतां भक्तानामवन्ध्यं फलं ददानम्। न च फलशून्यत्वमेव वन्ध्यत्वं, तत्र कथं फलेऽवन्ध्यत्वविशेषणं, तस्य फलान्तरवत्त्वे तत् साधनमेव स्यान्न तु फलमिति वाच्यम्। यतः फलाद्धि पुनर्बीजाङ्कुरादिक्रमेण सहस्रशः फलान्याम्रादौ दृष्टानि। न पुनः कदलीफलादौ। इह तु नमतां बुद्ध्यादिफलदत्वं, ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करादिति प्रसिद्धेः। तस्य फलं मोक्षादिकमिति फलस्यापि फलान्तरवत्त्वं युक्तम्। अत एवाचरणादिविरहे वन्ध्यज्ञानत्वं लोके प्रसिद्धम्। निगमवृन्दतुरगम्। उक्तालौकिकरथे निगमवृन्दान्येव तुरगा यस्य तम्। निगमवृन्दमेव तुरगश्चित्तं यस्य तमिति वा 'तुरगश्चित्तवाजिनो'रिति मेदिनी। यथा नेत्रं वेदत्रयमेव तथा चित्तं निगमवृन्दमेव महादेवस्य। निरुपमम् - उपमारहितम्। सचण्डिकं - चण्डिकया पार्वत्या सहितम्। झटिति - एकक्षणे संहृतानि त्रीणि पुराणि येन स तं झटितिसंहृतपुरम्। तथाविधं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ८ ॥

अत्र प्रसिद्धत्रिपुरवधकथासंग्रहरूपत्वादर्थान्तरकरणप्रयासोऽनति-

प्रयोजनोऽन्यत्रप्रदर्शितनानार्थश्च, तथापि सारल्येन किञ्चिज्ज्ञातुमुच्यते। क्षिती रथ इव तस्य। सर्वपृथिवी व्याप्य वर्त्तमानत्वात्। 'व्याप्य स्थितं रोदसी' इति वचनात्। भुजगपुङ्गवः शेषः शक्तिविशेषः। गुण इव तस्य। कनकशृङ्गी उच्चैर्वर्त्तुलाकारो धनुरिव तस्य। कुरङ्गेति। रणनृत्यादिष्वपि रङ्गशब्दः। कुत्सितो रङ्गो येषां ते कुरङ्गाः। ईर्ष्याद्वेषादिना परस्परं युद्ध्यन्तः। नृत्यार्थमिव सर्वे जीवा नानारूपं गृहीत्वाऽऽगताः। तत्र स्वस्वभूमिकानिर्वाहमकुर्वाणा विकर्मरताः कुरङ्गाः 'रङ्गो ना रणे नृत्यरणक्षितौ। अस्त्री त्रपुणी'ति मेदिनी। तेषां कुरङ्गाणां नाशार्थं पृथुटङ्क एव परशुर्यस्य सः। टङ्कशब्दः कोपार्थः। 'टङ्को नीलकपित्थे च खनित्रे टङ्कनेऽस्त्रियाम्। जङ्घायां स्त्री पुमान् कोपे' इति कोशवचनात्। परशुः परं श्यतीति। कोपः कोपात्मकमायावृत्तिरेव परशुर्नाशको न तस्यायुधान्तरमावश्यकमिति भावः रुचिरकुङ्कुमरुचिमिति रुचिरकुङ्कुमस्य रुचिरिव रुचिर्यस्य सृष्टिकाले रजोगुणधारणादिति भावः। डमरुकं च चमत्कारं च दधतम्। 'डमरस्तु चमत्कार' इति त्रिकाण्डशेषः। मुकुन्दविशिखम्। मुकुन्दो भक्तिदो विष्णुर्ज्ञानदो वा। 'मुकुमव्ययमान्तश्च निर्वाणमोक्षदायकम्। तद् ददाति च यो देवो मुकन्दस्तेन कीर्तितः।

मुकुं भक्तिरसप्रेमवचनं वेदसम्मतम्।
यस्तद्ददाति विप्रेभ्यो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः॥

इति ब्रह्मवैवर्त्तादिवचनात्। स एव विशिखा स्वल्पमार्गो यस्य तम्। 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यभिधानचिन्तामणिः। भक्तिज्ञानप्रद-शरणगमनमेव परमात्मप्राप्तिलघुमार्ग इति भावः। तथा च कृतोपास्तीनां

जीवन्मुक्तिसम्पत्तिराख्यायते विद्वद्भिः। सा चोपास्तिः श्रवणादेः प्रागेव कृता सगुणसाकारविषयैव। नमदिति व्याख्यातार्थम्। निगमेति। निगमवृन्दमेव तुरगश्चित्तं स्वरूपबोधकं यस्य तम्। सचण्डिकं सशक्तिम्। झटितीति व्याख्यातचरम्। परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ८ ॥

त्रिपुरासुरवध के समय भगवान शंकर ने पृथिवी को रथ बनाया था। मेरु को धनुष, शेषनाग को धनुष की डोरी, विष्णु को बाण, एवं वेदों को घोडे बनाये थे ऐसे असंभव रथ पर वे बैठे थे. हाथो में मृग, टंक एवं परशु आदि धारण किये हुए थे। कुंकुम लिप्त डमरु हाथ में लिये हुए थे। फिर क्या था? क्षण में ही दुर्धर्ष त्रिपुरासुर का सफाया कर डाला। प्रणतजनों के पूर्णफलप्रदाता, अजन्मा, पार्वतीसहित भगवान चिदम्बरस्थ उन नटराज का हम भजन करते हैं ॥ ८ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. He is without birth. The Earth itself is his chariot. The great serpent, Vasuki is his bow-string (or is his sacred thread). The golden-peaked Meru is his bow. In his hands shines a deer, a big sword and an axe. He wields a damaru (small drum) which has the colour of lovely Kumkuma. Mukunda i.e. Vishnu himself is his arrow. He effectively grants the desire to those who salute him. The multitude of Vedic texts are his horses (or mind). The incomparable god

accompanied by Chandika has quickly destroyed the cities of Demon Tripura. (8)

अनङ्गपरिपन्थिनमजं क्षितिधुरन्धरमलं करुणयन्तमखिलं
ज्वलन्तमनलं दधतमन्तकरिपुं सततमिन्द्रमुखवन्दितपदम्।
उदञ्चदरविन्दकुलबन्धुशतबिम्बरुचिसंहतिसुगन्धिवपुषं
पतञ्जलिनुतं प्रणवपञ्जरशुकं परचिदम्बरनटं हृदि भजे॥ ९ ॥

हरं त्रिपुरभञ्जनमित्येवं प्रणवसञ्चितनिधेः प्रणवविषयतयोपासनं यथा कर्तव्यं तथा दर्शितं नटराजस्वरूपविषये अधुना सर्वसामान्य-शङ्करस्वरूपविषयकं प्रणवार्थतयोपासनं प्रतिपादयति - अनङ्गेति। अनङ्गस्य कामदेवस्य परिपन्थिनं वैरिणम्। अजं जन्मरहितम्। क्षितिधुरन्धरं क्षितिभारधारकम्। अखिलं लोकमलमत्यर्थं करुणयन्तं सर्वजनेषु परमकृपालुम्। ज्वलन्तम् अनलमग्निं दधातीति दधतम्। अन्धकरिपुम् - अन्धकनाम्नोऽसुरस्य हन्तारम्। सततमिन्द्रमुखैरिन्द्र-प्रभृतिभिः वन्दितपदमिन्द्रमुखवन्दितपदम्। ततं ततिर्व्याप्तिस्तेन सह वर्तत इति सततं व्यापकमिति वा। उदञ्चदिति। उदञ्चतामुद्गच्छतामर-विन्दकुलबन्धुनां कमलबान्धवानां सूर्याणामिति यावत्। यानि शतानि असङ्ख्यानि बिम्बानि तदीयरुचिसंहतिरिव रुचिसंहतिर्यस्य तथाविधं, सुगन्धि वपुर्यस्य स तथा तम्। गन्धो गन्धक आमोदे स्नेहे सम्बन्धगर्वयोरिति विश्वः। 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनमि'-तियाजुषमन्त्रोक्तं सुगन्धित्वमत्र विवक्षितम्। पतञ्जलिनुतं पतञ्जलिना मया पूर्ववर्तिना वा नुतं स्तुतं बद्धाञ्जलिना वा नुतम्। प्रणवपञ्जरशुकं, प्रणवः पञ्जर इव तत्र वर्त्तमानः शुक इव शुकस्तम्। शब्देऽर्थस्य

निबद्धत्वात् प्रणवः पञ्जरवज्ज्ञेयः। 'तस्य वाचकः प्रणव' इत्युक्ते। परमात्मा हि विश्ववैश्वानररूपेणाऽकारे तैजसहिरण्यगर्भरूपेणोकारे, प्राज्ञेश्वररूपेण मकारे शिवरूपेणार्धमात्रायां शुकवत् स्थितः। तं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ९ ॥

पक्षान्तरे - अनङ्ग इति कामसुखं तस्य परपन्थी ब्रह्मानन्दे सति कामादिसुखाभिलाषाऽस्तमयावश्यम्भावात्। नह्युदिते सूर्ये ताराः प्रकाशन्ते। तमनङ्गपरिपन्थिनम्। क्षितिः क्षयः संहारस्तत्र धुरन्धरम्। सर्वसंहारकारिणम्। एवमप्यखिलं करुणयन्तम्। ज्वलन्तमनलं संहारकाले कालानलं दधानम्। अन्धकरिपुम्। अन्धयति जनानन्धकमज्ञानं तस्य रिपुं नाशकम्। सततमित्यादि पूर्ववत्। उदञ्चदिति। शतसहस्रादिपदानाम् अनन्तवाचित्वाद् अनन्तसूर्यप्रकाश-संहतित्वोक्तिस्तेजोरूपत्वपर्यवसिता। तेजश्च ज्ञानात्मकं बोध्यम्। सुगन्धिवपुषम्। गन्धशब्दः स्नेहार्थश्च। प्रेमैकविग्रहम्। शिष्टं व्याख्यातम्। तं परचिदम्बरनटं हृदि भजे ॥ ९ ॥

भगवान शंकर मदनान्तक हैं। अजन्मा हैं। पृथिवी के भार को धारण करनेवाले हैं। सब पर पूर्ण करुणा बरसानेवाले हैं. जलती हुई अग्नि को वे धारण करते हैं। अन्धकासुर का उन्हों ने वध किया। इन्द्रादि देवता उनके चरणों की वन्दना नित्य करते रहते हैं। उगते हुए सैकडों सूर्यबिम्बों के समान वे तेजस्वी हैं। पुष्टिवर्धन सुगन्धी स्निग्ध शरीर से शोभायमान हैं। ॐकाररूपी पिञ्जर के अंदर बैठे शुक हैं। पतञ्जलि के द्वारा स्तुत चिदम्बरस्थ उन नटराज भगवान का हम भजन करते हैं ॥ ९ ॥

I heartily resort to the Great Dancer, Shiva, residing in the holy place, Chidambaram. The birthless god is an enemy of Cupid. He bears the burden of the earth. He is intensely compassionate to all. The killer of Demon Andhaka is capable of holding burning fire. Gods headed by Indra are constantly falling at his feet. He is having a body which has got the lustre of a group of hundred rising Suns (literally, relative of lotuses) and is fragrant. He is praised byPatanjali and is like a parrot in the cage of the syllable Omkara. (A bird which is ontained in a cage is the very essence of it. Similarly, Shiva is the essence of the holy syllable Om). (9)

इति स्तवममुं भुजगपुङ्गवकृतं प्रतिदिनं पठति यः कृतमुखः
सदःप्रभुपदद्वितयदर्शनपदं सुललितं चरणशृङ्गरहितम्।
सरः प्रभवसम्भवहरित्पतिहरिप्रमुखदिव्यनुतशङ्करपदं
स गच्छति परं न तु जनुर्जलनिधिं परमदुःखजनकं दुरितदम्॥ १० ॥

एवं नवभिः श्लोकैः कृतायाः स्तुतेः पठनस्य फलमाह - इतीति। इति पूर्वपठितरूपममुं स्तवम्। भुजगपुङ्गवकृतं भुजगपुङ्गवेन शेषावतारेण पतञ्जलिना कृतम्। प्रतिदिनं यः कृतमुखः - 'वैज्ञानिकः कृतमुखः कृती कुशल इत्यपी'त्यमरः। कुशलत्वोक्तिरर्थानुसन्धान-पूर्वकपठनपर्यन्तत्वलाभाय। पठति। कीदृशम् सद इति। सदसां सीदन्त्यत्र विद्वांस इति देवादिसकलसदां प्रभुर्महेश्वर इति यावत्। तस्य पदद्वितयं चरणद्वयं सगुणनिर्गुणपदद्वयं वा तस्य दर्शनं येभ्यस्तादृशानि

पदानि यत्र स तथा तम्। स्तवम्। किं च सुललितं सविलासम्। किं च चरणशृङ्गरहितम्। एकाकारप्रवाहित्वात्। स्थितिरूपचरणेनान्त-रूपशृङ्गेण च रहितम्। चरणशृङ्गनामकच्छन्दोबद्धमित्यर्थः। सदञ्चितमुदञ्चितमित्यादौ भगणलघुषट्कं गुरुलघू च। न चान्ते गुरुलघू शृङ्गवत् तिष्ठत इति वाच्यम्। तयोरनतिस्फुटत्वादभाववदेवेति भावः। अथवा एकसत्वेऽपि द्वयं नास्तीति स्वीकारात् चरणसत्त्वे शृङ्गे न स्तः। शृङ्गसत्त्वे चरणे न स्त इति तदुभयत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभाववत्त्वं विवक्षितम्। तथा हि सदञ्चितमित्यादि-भगणलघुषट्कस्वीकारे चरणाक्षराभ्यां लघुगुरुभ्यां शृङ्गसत्त्वेऽपि प्रथमं चरणे न स्तः। परं सुरवरं पुरहरमित्यादौ प्रथमं लघुगुरू चरणवत्तिष्ठतः सुरवरमित्यादि नगणगुरुषट्कमिति स्वीकारे शृङ्गे न स्तः। इत्थं च चरणशृङ्गोभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्त्वं स्पष्टम्। परे तु विष्णुब्रह्मभ्याम् आद्यन्तदर्शनार्थं वराह-हंसरूपाभ्यामध ऊर्ध्वं सहस्रपरिवत्सरगमनेऽपि तददर्शनेन निवृत्तत्वादाद्यन्तरहितः शिव इति समर्थितम्। तदेव चरणशृङ्गरहितनाम शिवस्य। शिवस्य चरणशृङ्गरहितत्वात्तत्स्तुतेरपि चरणशृङ्गरहितत्वं भक्त्या निगद्यत इत्याहुः। किं च सर इति। सरःप्रभवं कमलम्। तत्सम्भवो ब्रह्मा कमलजः- हरित्पतयः हरितां दिशां पतयः।

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्।
कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्॥

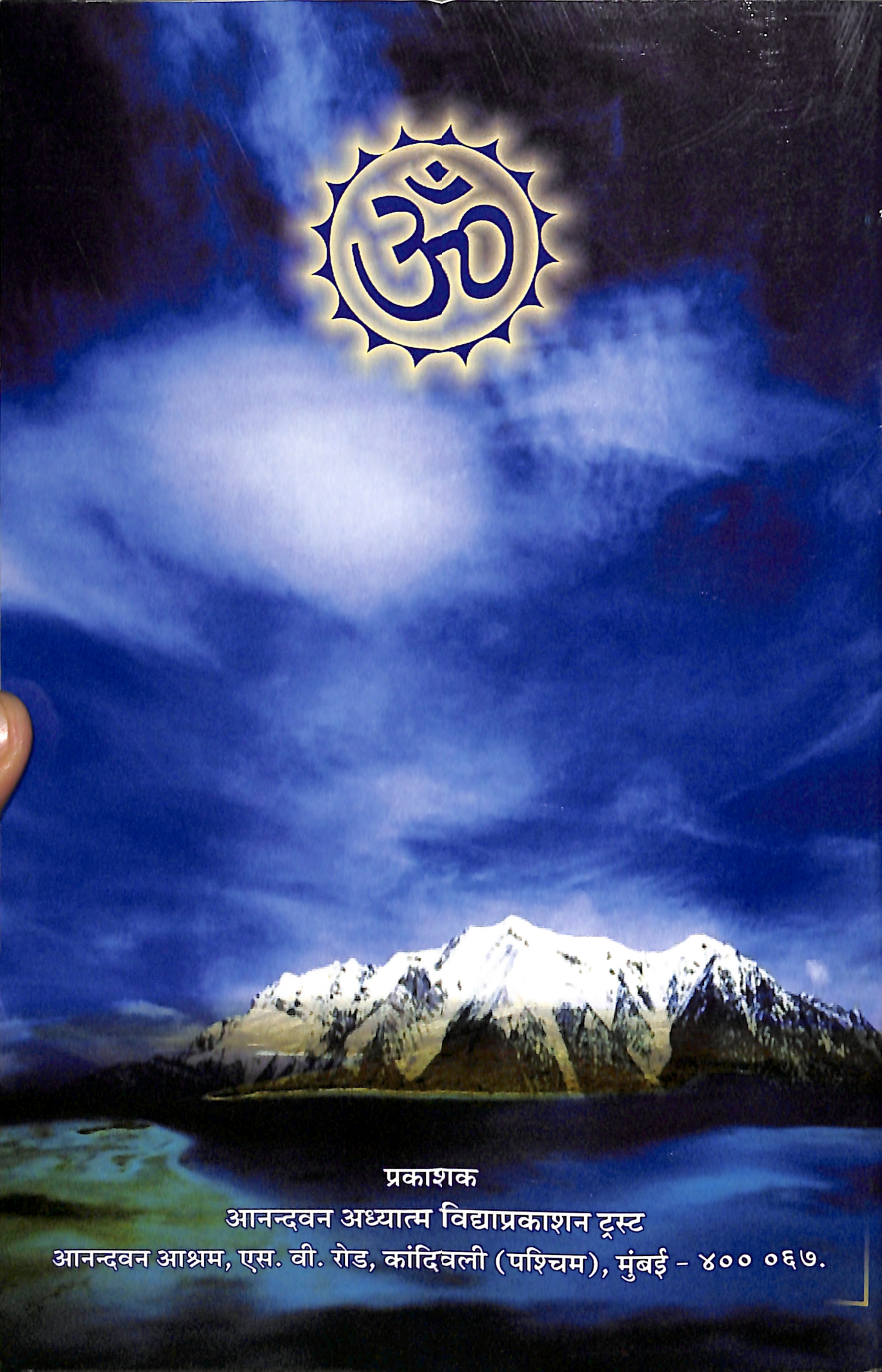
इत्युक्ता इन्द्रादयः हरिः विष्णुः एते प्रमुखा यत्र एतत्प्रभृतयस्तैः दिव्यं यया स्यात्तथा नुतं स्तुतं शङ्करपदं शङ्करस्वरूपं प्रतिपाद्यतया

विद्यते यस्मिन् स तथा तम्। एतत्प्रभृतिभिर्दिव्यं यथा स्यात् तथा नुतस्य शङ्करस्य बोधकानि पदानि तान्येव नुतिपदानि यस्मिंस्तमिति वा। उक्तैर्दिव्यतया स्तुतानि उच्चरितानि शङ्करबोधकपदानि यस्मिंस्तमिति वा। पतञ्जलेर्भगवतः सर्वज्ञत्वाद् ब्रह्मादिभिरुच्चारिताः शब्दा अत्र योजिता इति भावः। तमिमं स्तवं यः पठति। स गच्छति परम्। 'ब्रह्मविदाप्नोति परमि'त्युक्तं परं ब्रह्म प्राप्नोति। एतत्पाठकर्तुर्ब्रह्मवित्त्वसंपत्तेरिति भावः। न तु जनुर्जलधिं जन्मसंसारसागरं गच्छतीत्यनुषङ्गः। कीदृशं? जन्मसत्त्वे वा का हानिरित्यत्राह - परमदुःखजनकमिति। 'दुःखमेतत्सर्वं विवेकिन' इत्युक्तेः संसारः सर्वोऽपि दुःखद एवेति भावः। ननु भोगेन दुःखनिदानकर्माणि क्षपयित्वा पश्चान्मोक्षं प्राप्स्यामः किमेतत्पाठेन को वा कतिपयजन्मस्वीकरणे दोष इत्यत्राह - दुरितदमिति। लब्ध्वा जन्म न केवलं दुरितफलानि दुःखानि भुङ्क्ते किं तर्हि, दुरितं करोत्यपि मर्त्य इति पुनर्जन्म मरणपरम्पराप्रापकमित्यर्थः। दुरितेत्यनेन पुण्यपापे उभे विवक्षिते। 'न सुकृतं न दुष्कृतम्' इत्युपक्षिप्य 'सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्ते' 'अपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः' इत्येवं श्रुतौ पाप्मत्वेन सुकृतदुष्कृतोभयपरामर्शात्। दुष्ठु गमनागमनं जन्ममरणादिलक्षणम् इतं गतं गमनं यस्मात् तद् दुरितं तद् ददातीति दुरिदाम्। एवंविधं जनुर्जलधिं न गच्छतीत्यन्वयान्नामङ्गलता। दुरितानि द्यति खण्डयतीति तथाभूतं परं गच्छतीति व्यवहितान्वयो वा भवजलधिविपरीत - सकलकर्मात्मकदुरितनिवर्तनरूपमोक्षकथनं पदव्यवधानेनापि युक्तमेवेति सर्वं चतुरस्रम् ॥ १० ॥

इति श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य महामण्डलेश्वर श्रीकाशिकानन्दगिरिकृता नटराजस्तोत्रव्याख्या समाप्ता।

देवसभा के स्वामी प्रभु शंकर के चरणों का दर्शन करानेवाले दिव्यपदों से युक्त, पतञ्जलिकृत, चरणशृङ्गरहित नामक छन्द में निबद्ध, सुललित इस स्तुति को कण्ठस्थ कर जो प्रतिदिन पढता है सरोजोत्पन्न ब्रह्मा, इन्द्रादि दिक्पाल, एवं विष्णु आदि महान देवों की दिव्य स्तुतियों से स्तुत शंकर भगवान के परम धाम को वह प्राप्त होता है। वह पुनः दुःखकारी दुरतिदायी संसारजलधि में नहीं डूबता ॥ १० ॥

Here ends the praise-song composed by Patanjali who is an incarnation of the great serpent Shesha. One who learns it by heart and recites it will find a seat (in the assembly of gods). The praise-song is charming. The words in it lead to the perception of the pair of feet of the Lord. It flows on being beginingless and endless (or is composed in the metre Charanashringarahita). It contains the description of Shankara praised by the divine beings headed by Brahmadeva, Lords of the Quarters and Vishnu. One who recites this hymn reaches the highest goal and does not (steep) into the ocean of worldly existence which causes great sorrows and offers sinfulness. (10)



प्रकाशक

आनन्दवन अध्यात्म विद्याप्रकाशन ट्रस्ट

आनन्दवन आश्रम, एस. वी. रोड, कांदिवली (पश्चिम), मुंबई - ४०० ०६७.